द्वाविंश परिच्छेद

जैन रामायण

कर्मभूमि के प्रारम्भ में संसार के आदि महापुरुष, आदि ब्रह्मा, आदि तीर्थंकर, आदिनाथ, आद्य भगवान ऋषभदेव हुए। उनके पिता का नाम नाभिराय था, जो चौदहवें कुलकर या मनु थे। माता का नाम मरुदेवी था।

इक्ष्वाकु वंश, सूर्यवंश, चन्द्रवंश

उनके सौ पुत्र और दो पुत्रियाँ थीं। बड़े पुत्र का नाम भरत था, जो भरत क्षेत्र के प्रथम चक्रवर्ती सम्राट् थे। इन्हीं के नाम पर इस देश का नाम भारत पड़ा। दूसरे पुत्र बाहुबली थे, जो प्रथम कामदेव थे। पुत्रियों के नाम ब्राह्मी और सुन्दरी थे। ब्राह्मी को भगवान ऋषभदेव ने लिपि विद्या सिखाई थी। उसके नाम पर ही आगे लिपि का नाम ब्राह्मी लिपि पड़ गया। भगवान ने अपनी दूसरी पुत्री सुन्दरी को अंक विद्या सिखाई थी।

भगवान जब गृहस्थाश्रम छोड़कर प्रव्रजित हो गये तो उन्होंने छह माह तक घोर तपस्या की। उसके पश्चात् वे नगर में आहार के लिये निकले। किन्तु उस समय लोग मुनिजनोचित आहार की विधि नहीं जानते थे। अतः भगवान अपने नियमानुसार आहार को निकलते और विधि के अनुकूल आहार न पाकर बन में लौट जाते। इस प्रकार छह माह बीत गये। तब विहार करते हुए भगवान हस्तिनापुर नगर में पधारे। वहाँ के राजा सोमप्रभ के लघु भ्राता श्रेयान्स को भगवान का दर्शन करते ही पूर्वजन्म में मुनि को दिये हुए आहार का स्मरण हो आया। उस समय महल में शुद्ध इक्षु रस (गन्ने का रस) रक्खा हुआ था। राजकुमार श्रेयान्स ने भगवान को आहार में वही इक्षु-रस दिया। राजा श्रेयान्स दान-तीर्थ के कर्ता और आद्य प्रवर्तक कहलाये।

यह घटना भगवान के मुनि-जीवन से सम्बन्धित प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना थी। अतः भगवान का कुल इक्ष्वाकु वंश कहलाया। इसी वंश को इतिहासकारों ने ककुत्स्थ वंश भी कहा है क्योंकि भगवान ऋषभदेव का ध्वज-चिन्ह ककुत्स्थ (बैल) था।

इसी वंश से सूर्यवंश निकला। चक्रवर्ती भरत के ज्येष्ठ पुत्र अर्ककीर्ति थे। वे अत्यन्त तेजस्वी और प्रभावशाली थे। उनके नाम पर ही सूर्यवंश की उत्पत्ति हुई और उनके वंशजों को सूर्यवंशी कहा जाने लगा। इस वंश में अनेक प्रतापी सम्राट् हुए। राजकुमार श्रेयान्स के बड़े भ्राता सोमप्रभ से सोमवंश अथवा चन्द्रवंश चला।

इक्ष्वाकु वंश में अनेक राजा हुए। भगवान मुनिसुव्रतनाथ के तीर्थकाल में निजय नाम का एक राजा हुआ। उसके वंश में सुन्दर, कीर्तिधर, सुकौशल, हिरण्य, रुचिनघुष, सौदास सिंहरथ आदि राजा हुए। इसी वंश में हिरण्य कश्यप हुआ। उसके पुंजस्थल, फिर ककुत्स्थ, और उससे रघु हुआ। रघु अत्यन्त प्रतापी सम्राट् था। उससे ही रघुवंश चला।

रघुवंश

राजा रघु के अनरण्य नाम का पुत्र हुआ। अनरण्य की पटरानी पृथ्वीमती थी। उनके दो पुत्र हुए—एक का नाम था अनन्तरथ और दूसरे का नाम था दशरथ। अनन्तरथ तो अपने पिता के साथ यथासमय सन्यास लेकर मुनि हो गया। अतः राज्याधिकार दशरथ को प्राप्त हुआ।

राजा दशरथ और उनकी रानियाँ

दशरथ अत्यन्त तेजस्वी और नीति परायण नरेश थे। उन्होंने तीन राजकुमारियों के साथ विवाह किये—

एक तो अपराजिता, जिसका दूसरा नाम कौशल्या था। यह दर्भपुर के राजा सुकोशल और उनकी रानी अमृतप्रभा की पुत्री थी। दूसरी सुमित्रा, जिसके माता-पिता पद्मपत्र नगर के राजा तिलकबन्धु और रानी मित्रा थी। तीसरी राजकुमारी का नाम सुप्रभा था जो रत्नपुर के राजा की पुत्री थी। इसी काल में राजा जनक मिथिलापुर में शासन कर रहे थे। वे हरिवंशी थे। उनके पूर्वजों में विजय, दक्ष, इलाबर्धन, श्रीवर्धन, श्रीवृक्ष, संजयन्त, कुणिम, महारथ, पुलोमा आदि अनेक प्रतापी राजा हो चुके थे।

एक बार राजा दशरथ राजदरबार में बैठे हुए थे। तभी आकाशमार्ग से नारद आये। राजा ने उनकी यथोचित अभ्यर्थना की और कुशल-मंगल पूछने के बाद उनके आने का कारण पूछा। तब नारद ने बताया कि मैं लंका गया हुआ था। वहाँ का राजा महाबलवान राक्षसवंशी रावण है। उसकी सभा में एक बड़ा दुःखदायक समाचार सुना। किसी ज्योतिषी ने रावण से यह कहा कि सीता के निमित्त से दशरथ के पुत्रों द्वारा तुम्हारी मृत्यु होगी। यह सुनकर विभीषण ने रावण से कहा कि दशरथ और जनक के जबतक सन्तान होगी, उससे पहले ही मैं उन दोनों राजाओं को मार डालूंगा। उसने अपने चर छद्मवेश में तुम्हें देखने भेजे थे। वे तुम्हें देख कर वापिस चले गये हैं और तुम्हारे बारे में सारे समाचार विभीषण को दिये हैं। अतः विभीषण तुम दोनों को मारने के लिए शीघ्र ही आने वाला है। अतः तुम्हें अपनी रक्षा का समुचित प्रबन्ध कर लेना चाहिए।

नारद से यह समाचार सुनकर दशरथ अत्यन्त भयभीत हो गये। नारद वहाँ से राजा जनक के पास गये और उन्हें भी ये समाचार सुनाये। दोनों ने अपने मन्त्रियों से परामर्श किया। मंत्रियों ने कहा कि जब तक यह विघ्न टल नहीं जाता, आप प्रच्छन्न रूप में किसी दूसरे नगर में रहें। यह सुनकर दोनों राजा देशान्तर को चले गये और उनके स्थान पर दो नकली शरीर बनाये गये। उनमें लाख आदि का एक भरकर सिंहासन पर बैठा दिया। विभीषण ने आकर उन नकली राजाओं को मार डाला। विभीषण प्रसन्न होकर लंका वापिस चला गया।

उधर दशरथ जनक के साथ अनेक देशों में भ्रमण करते हुए कौतुकमंगल नगर में पहुँचे। उस नगर का राजा शुभमति था। उसकी रानी का नाम पृथ्वीमही था। उसके दो पुत्र-कैकय और द्रोण थे और एक रूपगुणवती कन्या थी, जिसका नाम केकामती (कैकेयी) था। वह कन्या संगीत, शस्त्र और शास्त्र में अत्यन्त निपुण थी। राजा ने उसके विवाह के लिए स्वयंवर रचा, जिसमें अनेक राजा भाग लेने आये। वहाँ दशरथ और जनक भी बैठ गये। राजकुमारी कैकेयी वरमाला लेकर स्वयंवर मण्डप में आई। द्वारपाली सब राजाओं का परिचय देती गई। जब कैकेई दशरथ के सम्मुख पहुंची तो उसने दशरथ के गले में वरमाला डाल दी।

नारद की उत्पत्ति

नारद, जो बड़ा कलहप्रिय कहलाता है, उसका जन्म किन विचित्र परिस्थितियों में हुआ, यह जानना बड़ा रुचिकर है।

ब्रह्मरुचि नाम का एक ब्राह्मण था। उसकी पत्नी कूर्मी थी। दोनों सन्यासी थे। जंगल में एक मठ में रहते थे। एक बार कूर्मी को गर्भ रह गया। वहाँ एक बार एक दिगम्बर मुनि पधारे। दोनों सन्यासी आकर बैठ गये। वे मुनि ने पूछा—यह गर्भिणी स्त्री कौन है? ब्राह्मण बोला—यह मेरी पत्नी है। मुनि बड़े आश्चर्य से बोले-तू तो सन्यासी है। तुझे स्त्री रखना उचित नहीं है।

ब्राह्मण मुनिराज के उपदेश से मुनि बन गया। ब्राह्मणी को बड़ा दुःख हुआ कि इस अवस्था में वह दीक्षा नहीं ले सकती। किन्तु जब बालक उत्पन्न हुआ और १६ दिन का हो गया तो ब्राह्मणी उसे एक सुरक्षित स्थान पर रखकर चली गई और तपस्विनी हो गई। बालक चुपचाप पड़ा था। संयोग की बात कि आकाश में जाते हुए जृम्भक नामक एक देव ने बालक को देखा और दया-वश उसे उठाकर ले गया। उसका लालन-पालन किया और शास्त्रों का अध्ययन कराया।

जब बालक यौवन सम्पन्न हुआ तो उसने आकाशगामिनी विद्या सिद्ध कर ली, क्षुल्लक के व्रत भी ले लिए। साथ ही जटायें रखली, मुकुट भी पहनने लगा। इस तरह वह न गृहस्थ ही रहा, न मुनि ही। वह हास-विलास का प्रेमी था, अत्यन्त वाचाल था, कलह देखने का इच्छुक और संगीत का शौकीन था, वह ब्रह्मचारी था, राजघरानों में उसका बड़ा सम्मान था। देवों ने उसका पालन किया था और देवों के साथ उसकी क्रीड़ायें थीं। इसलिए वह देवर्षि कहलाता था।

राजा लोग एक अज्ञातकुलशील व्यक्ति के गले में वरमाला पड़ी देखकर अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और लड़ने के लिए तैयार हो गये। तब राजा शुभमति उनसे लड़ने के लिए तैयार हुआ, किन्तु दशरथ ने उसे रोक दिया और सेना लेकर स्वयं रणक्षेत्र में जा पहुँचा। राजा दशरथ के सारथी का दायित्व कैकेयी ने लिया। कैकेयी रथसंचालन में अत्यन्त निपुण थी। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। किन्तु दशरथ की रणचातुरी और कैकेई की रथ-संचालन की चातुरी के कारण विजयश्री दशरथ को मिली। राजा पराजित हो गये। दशरथ का कैकेयी के साथ समारोह-पूर्वक विवाह हो गया और वह अयोध्या लौट आये तथा जनक मिथिला चले गये।

एक दिन दशरथ रानियों के बीच बैठे हुए कैकेयी की प्रशंसा करते हुए बोले—प्रिये! तुमने जिस कौशल से रथ का संचालन किया था, उसी के कारण मेरी विजय संभव हो सकी थी। मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर मांगलो। कैकेयी पहले तो अपनी लघुता बताती हुई टालती रही। किन्तु जब राजा ने बार-बार आग्रह किया तो बोली—'नाथ! मेरा वर आप धरोहर के रूप में सुरक्षित रखलें। जब मुझे आवश्यकता होगी, तब मैं मांग लूंगी।' राजा ने भी कह दिया—तथास्तु।

भरत क्षेत्र के मध्य में विजयार्ध नामक एक विशाल पर्वत था, जिसकी दो श्रेणियाँ थीं—उत्तर श्रेणी और दक्षिण श्रेणी। इन दोनों श्रेणियों की राजधानी क्रमशः अलकापुरी और रथनूपुर थीं। इन श्रेणियों में विद्याधरों का निवास था। वे यद्यपि मनुष्य थे किन्तु वे विद्याओं की सिद्धि किया करते थे, (जिसे आधुनिक भाषा में कह सकते हैं कि वे वैज्ञानिक प्रयोग किया करते थे। इसलिए उनके पास विमान थे तथा अद्भुत शस्त्रास्त्र थे।) इन विद्याधरों में अनेक जातियाँ थी—राक्षस, वानर, ऋक्ष, गन्धर्व, किन्नर आदि। इन्हें जातीय अभिमान था और ये भूमि पर रहने वालों को भूमिगोचरी कहते थे तथा उन्हें हीनदृष्टि से देखते थे। यहाँ तक कि भूमिगोचरियों को अपनी कन्या देना अपना अपमान समझते थे। यद्यपि भूमिगोचरी राजाओं ने अपने बाहुबल के द्वारा विद्याधरों की कन्याओं के साथ विवाह किया था, किन्तु फिर भी विद्याधरों में जातीय अभिमान बहुत काल तक बना रहा।

राक्षस वंश और वानर वंश

द्वितीय तीर्थंकर भगवान अजितनाथ के समय मेघवाहन नामक राजा को प्रसन्न होकर राक्षस जाति के देवों के इन्द्र भीम और सुभीम ने समुद्र के मध्य में बसे हुए राक्षस द्वीप की राजधानी लंका तथा पाताल लंका का राज्य दिया था तथा अद्भुत कान्ति वाला रत्नहार दिया था। फलतः राजा मेघवाहन अपने परिवार सहित राक्षस द्वीप में जा बसा और वहाँ आनन्दपूर्वक राज्य करने लगा।

राक्षस वंश

उसके वंश में आगे चलकर एक महाप्रतापी राजा हुआ, जिसका नाम राक्षस था। उसके नाम पर उस वंश का नाम राक्षस वंश पड़ गया।

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी के मेघपुर नगर के अधिपति श्रीकण्ठ को लंका नरेश कीर्तिधुभ ने, जो श्रीकंठ का बहनोई था, शत्रुओं के उत्पात से बचाने के लिए वानर द्वीप दिया था। श्रीकंठ ने वहाँ जाकर नगर बसाया और सुखपूर्वक रहने लगा। इस द्वीप में वानर बहुत थे। श्रीकण्ठ तथा उसके नगरवासी उन वानरों से अपना खूब मनोरंजन किया करते थे तथा उनको पालते भी थे। उसी के वंश में आगे चलकर अमरप्रभ राजा हुआ। उसने अपनी ध्वजा, मुकुट, छत्र, तोरण और द्वारों पर वानरों के चिन्ह खुदवा दिये। तबसे सारे नगरवासी बन्दरों को आदर की दृष्टि से देखने लगे। इसीलिए उनके वंश का नाम वानर वंश पड़ गया।

वानर वंश

राक्षस और वानर वंशियों में परस्पर बड़ा प्रेमभाव था। एक बार रथनूपुर के राजा अशनिवेग से वानर नरेश और राक्षस नरेश सुकेश का युद्ध हुआ। उस युद्ध में दोनों वंश के राजा हार गये और युद्ध छोड़कर भागे तथा पाताल लंका में जाकर रहने लगे। अशनिवेग ने लंका की गद्दी पर निर्घति नामक राजा को बैठा दिया। कुछ काल पश्चात् वानर वंशी किष्कन्ध ने समुद्र के किनारे किष्कन्ध नामक नगर बसाया और वहीं रहने लगा।

राक्षस कुल में रावण का जन्म

राक्षस वंशी सुकेश के तीन पुत्र हुए—माली, सुमाली और माल्यवान। जब माली को अपने माता-पिता

से लंका की पराजय का समाचार मालूम हुआ तो उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर सेना लेकर लंका पर आक्रमण कर दिया और निर्घात को मारकर पुनः लंका का राज्य प्राप्त कर लिया तथा राक्षसवंशी पुनः आनन्द से लंका में रहने लगे।

उस समय रथनुपुर नगर का राजा सहस्रार था। उसकी रानी मानससुन्दरी को गर्भ के समय इन्द्र जैसी क्रीड़ा करने की इच्छा होती थी। अतः राजा रानी खूब क्रीड़ा किया करते थे। जब पुत्र उत्पन्न हुआ तो उसका नाम इन्द्र रक्खा। इन्द्र बड़ा बलवान था। युवा होने पर उसने अपने वैभव आदि इन्द्र जैसे ही बनाने शुरू किये। अपने महल का नाम वैजयन्त रक्खा। अपने हाथी का नाम ऐरावत, सभा का नाम सुधर्मा, नर्तकियों का नाम उर्वशी, तिलोत्तमा रक्खा। नागरिकों को देव संज्ञा दी। मंत्री का नाम बृहस्पति, सेनापति का नाम हिरण्यकेश रक्खा। लोकपालों की चारों दिशाओं में नियुक्ति की, जिनके नाम उसने सोम, वरुण, कुबेर और यम रक्खे। अपनी रानी का नाम शची रक्खा। इसने विजयार्ध की दोनों श्रेणियाँ जीत लीं।

एक बार लंकापति माली विजयार्ध की दोनों श्रेणियों को जीतने के लिए विशाल सेना लेकर चला। उसके साथ में वानरवंशी राजा सूर्यरज और यक्षरज भी थे। इन्द्र से उनका भयानक युद्ध हुआ। इस युद्ध में माली मारा गया और राक्षस सेना युद्ध से भाग गई। तब इन्द्र के लोकपाल सोम ने लंका और किष्किन्धा पर अधिकार कर लिया। राक्षस और वानरवंशी पाताल लंका में जाकर रहने लगे।

सुमाली के रत्नश्रव नामक पुत्र हुआ। उसका विवाह केकसी से हो गया। केकसी ने एक रात को तीन स्वप्न देखे—एक तो क्रोध से उद्धत सिंह देखा, दूसरा उगता हुआ सूर्य देखा और तीसरा परिपूर्ण चन्द्रमा देखा। रानी ने अपने स्वप्नों का हाल पति से कहा। राजा ने विचार कर कहा—प्रिये! तुम्हारे तीन पुत्र होंगे—एक तो महान योद्धा और पाप कर्म में समर्थ होगा तथा दो कुटुम्ब को सुख देने वाले पुण्य पुरुष होंगे।

जब रावण गर्भ में आया तो रानी अहंकार में भर उठी। वह बात-बात में सिंहनी की तरह दहाड़ उठती थी। यथासमय रावण का जन्म हुआ। एक दिन बालक इन्द्र द्वारा प्रदत्त उस रत्नहार के पास पहुँच गया, जिसकी रक्षा हजार नागकुमार देव करते थे। उसने वह हार उठा लिया। सब लोग बालक की महान शक्ति पर आश्चर्य करने लगे। उस हार में नौ रत्न लगे थे। उनमें रावण के नौ मुख और दिखाई देने लगे। तब सब लोगों ने प्यार में बालक का नाम दशानन रख दिया।

कुछ समय के पश्चात् केकसी के कुम्भकर्ण नामक दूसरा पुत्र हुआ। बाद में पूर्ण चन्द्रमा के समान चन्द्रनखा नामक पुत्री हुई और फिर विभीषण नाम का पुत्र हुआ।

एक दिन माता केकसी अपने पुत्रों के साथ महल की छत पर बैठी हुई थी। तभी आकाश में पुष्पक विमान जाता दिखाई दिया। उसे देखकर रावण ने माता से पूछा-मां! यह महा विभूति वाला कौन जा रहा है। तब माता बोली-पुत्र! यह तेरी मौसी कौशिकी का पुत्र वैश्रवण (कुबेर) है। यह विजयार्ध के राजा इन्द्र का लोकपाल है। इन्द्र ने तेरे बाबा माली को मारकर लंका छीन ली थी और इस कुबेर को वहाँ का लोकपाल बना दिया है। जब से लंका गई है, तब से तेरे पिता और मुझे रात में नींद नहीं आती है। माता के वचन सुनकर रावण ने माता को धैर्य बंधाया और कहा—मां! मैं जल्दी ही विजयार्ध के विद्याधरों को हराकर लंका पर अधिकार करूँगा। तू शोक और चिन्ता छोड़ दे।

इसके पश्चात् तीनों भाई वहाँ से भीम नामक वन में जाकर घोर तपस्या करने लगे। कुछ ही समय में रावण को एक हजार विद्यायें सिद्ध हो गईं, कुम्भकर्ण को पांच और विभीषण को चार विद्यायें सिद्ध हो गईं। इसके बाद रावण ने पुनः तपस्या की और चन्द्रहास नामक तलवार प्राप्त हुई। विद्या-सिद्धि के समाचार जानकर सारे कुटुम्बी वहाँ आ गये और बड़ा हर्ष मनाने लगे।

एक दिन असुरसंगीतनगर का दैत्य नरेश मय अपनी पुत्री मन्दोदरी को लेकर वहाँ आया। उसके साथ में मारीच आदि उसके मंत्री भी थे। मन्दोदरी अत्यन्त सुन्दरी गुणवती कन्या थी। राजा मय ने अपनी उस कन्या का विवाह रावण के साथ धूमधाम से कर दिया।

इसके बाद रावण ने पद्म श्री, अशोकलता, विद्युत्प्रभा आदि अनेक राजकन्याओं के साथ विवाह किये

मन्दोदरी उन सब रानियों में मुख्य पटरानी रही। कुम्भकर्ण जिसका दूसरा नाम भानुकर्ण था-का विवाह तडिन्माला के साथ और विभीषण का विवाह राजीव सरसी नामक राजकन्या के साथ हो गया। यथासमय मन्दोदरी के दो पुत्र हुए—इन्द्रजीत और मेघवाहन।

अब रावण की कुबेर से छेड़खानी शुरू हो गई। कुम्भकर्ण ने कुबेर की प्रजा लूट ली। कुबेर ने सुमाली के पास दूत भेज कर कहलवाया कि पहले तुम्हारा भाई मारा गया था। यदि तुमने अपने नातियों की उद्दण्डता को नहीं रोका तो तुम सबका बध निश्चित है। यह सुनकर रावण ने दूत को फटकार कर और अपमानित कर निकाल दिया। दूत ने जाकर कुबेर को सारे समाचार बताये। अतः क्रुद्ध होकर कुबेर ने अपनी सेना सजाकर रणभेरी बजा दी। रावण भी राक्षसवंशी और वानरवंशी सेनाओं को लेकर जा डटा। मुंज नामक पर्वत पर दोनों सेनाओं का घोर युद्ध हुआ। इस युद्ध में रावण ने कुबेर पर बज्रदण्ड का प्रहार किया, जिससे वह मूर्छित हो गया और उसकी सेना भाग खड़ी हुई। रावण ने कुबेर के पुष्पक विमान पर अधिकार कर लिया।

रावण का इन्द्र के साथ युद्ध

अब रावण ने दक्षिण के राज्यों को जीतना प्रारम्भ किया। वह रुका नहीं; बढ़ता ही गया। तभी समाचार मिला कि वानरवंशी यक्षराज और सूर्यरज ने अपनी किष्कु नगरी लेने के उद्देश्य से वानर द्वीप लूट लिया। यह समाचार सुनकर इन्द्र का भयंकर लोकपाल यम उनसे युद्ध करने आया। उसने युद्ध में यक्षरज को बन्दी बना लिया और सूर्यरज को मूर्छित कर दिया है। सारी वानर सेना का यम ने निर्दयतापूर्वक विध्वंस करना प्रारम्भ कर दिया। बहुत से वानरवंशी मारे गये और बहुत से वानर बन्दी बना लिये गये।

'यम ने अपने यहाँ नरक जैसी व्यवस्था कर रक्खी है। वहाँ वह बन्दी वानरों को निर्मम पीड़ा दे रहा है। अब आप की ही शरण है।' यह सुनकर रावण सेना सहित किष्कुपुर पहुँचा। वहाँ उसका यम के साथ भयंकर युद्ध हुआ। यम पराजित होकर भाग गया और इन्द्र के पास रथनूपुर जा पहुँचा। रावण ने बन्दी वानरों को मुक्त किया और यक्षरज को किष्कुपुर का राज्य दिया तथा सूर्यरज को किष्किन्धापुर का राज्य दिया। अपना गया हुआ राज्य पाकर वानरवंशी बहुत प्रसन्न हुए और सुखपूर्वक रहने लगे। रावण तब राक्षसवंशियों को लेकर समुद्र तट पर पहुँचा और बड़े उल्लास और समारोह के साथ लंका में प्रवेश किया।

इसी बीच एक घटना और हो गई। रावण लंका से बाहर गया हुआ था। तभी अलंकारपुर के राजा खरदूषण ने—जो मेघप्रभ का पुत्र था, लंका में आकर रावण की बहन सुन्दरी चन्द्रनखा को हर लिया। कुम्भकर्ण और विभीषण ने उसका प्रतिरोध भी किया, किन्तु वे उसे छुड़ा नहीं सके। खरदूषण बड़ा बलवान था। जब रावण लौटा और उसने यह समाचार सुना तो वह बड़ा क्रोधित हुआ और खरदूषण से युद्ध करने को तैयार हो गया। तब उसकी पटरानी मन्दोदरी ने उसे समझाया—'कन्या तो पराये घर की होती है। खरदूषण ने चन्द्रनखा का अपहरण कर लिया तो क्या बात हो गई। अपहृत कन्या को एक तो कोई लेता नहीं। दूसरे खरदूषण योग्य पात्र है। वह चौदह हजार विद्याधरों का राजा है। अनेक विद्यायें उसे सिद्ध हैं। वह समय पड़ने पर आपकी सहायता भी कर सकता है। फिर पता नहीं, युद्ध में किसकी जीत हो।" इस प्रकार समझाने से रावण भी युद्ध से विरत हो गया।

अब उसने इन्द्र को जीतने के लिये कूंच किया। चक्ररत्न उसके पास था, जिसकी रक्षा एक हजार देव करते थे। अनेक राजा और विशाल फौज उसके साथ थी। चलते चलते विन्ध्याचल पर नर्मदा के तट पर सेना ने पड़ाव डाला। प्रातःकाल नदी की बालू इकट्ठी करके उस पर जिनेन्द्र भगवान की प्रतिमा विराजमान करके रावण भक्ति से पूजा करने लगा। जहाँ रावण पूजा कर रहा था, उससे ऊपर की ओर नदी का जल बांधकर माहिष्मती का राजा सहस्ररश्मि अपनी स्त्रियों के साथ जलक्रीड़ा कर रहा था। जब क्रीड़ा कर चुका तो उसने बाँध का पानी छोड़ दिया। पानी के पूर से रावण की पूजा में बड़ा विघ्न पड़ा। वह क्रोधित होकर बोला कि यह क्या गड़बड़ है। कुछ लोगों ने आगे जाकर पता लगाया और आकर रावण से निवेदन किया—'महाराज! माहिष्मती नरेश सहस्ररश्मि अपनी रानियों के साथ जल-क्रीड़ा कर रहा था। उसने यह पानी छोड़ा है। यह सुनकर

रावण ने क्रोध में भर कर उस पर आक्रमण करने का आदेश दे दिया। सहस्ररश्मि भी युद्ध के लिए तैयार हो गया। दोनों ओर से युद्ध हुआ। अन्त में रावण ने उसे कौशल से नागपाश से बांध लिया। जब यह बात सहस्ररश्मि के पिता शतबाहु को—जो चारण ऋद्धिधारी तपस्वी मुनि थे—ज्ञात हुई तो उन्होंने रावण को समझाया। फलतः रावण ने सहस्ररश्मि को सम्मानपूर्वक छोड़ दिया और उसके साथ बन्धुत्व भाव प्रगट किया। किन्तु सहस्ररश्मि अपमान से दुखित होकर दिगम्बर मुनि बन गया।

तत्पश्चात् रावण आगे बढ़ा। मार्ग में उसने अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया, पुराने मन्दिरों का जीर्णोद्धार कराया। मार्ग में जो राजा पड़े, उन्हें जीतता हुआ उत्तर दिशा की ओर बढ़ा।

रावण अब इन्द्र के नगर की ओर बढ़ने लगा। किन्तु मार्ग में दुर्लंघ्यपुर नगर ने उसका अवरोध किया। इन्द्र ने विजयार्ध के मार्ग में रक्षा के लिए इस नगर में नलकुबेर को नियुक्त कर रखा था। नलकुबेर ने नगर के चारों ओर अभेद्य कोट बना रक्खा था तथा उसके द्वारों का पता नहीं चलता था। गुप्त द्वार बनाये हुए थे। कोट पर किसी शस्त्र का प्रभाव नहीं पड़ता था। रावण यह देखकर अत्यन्त चिन्तित हो गया। किन्तु नलकुबेर की स्त्री रम्भा ने ही कामासक्त होकर कोट को विजय करने की विद्या रावण को बता दी और रावण ने उसे सहज ही जीत लिया।

जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि रावण अत्यन्त निकट आ गया तो वह देव सेना लेकर मोर्चे पर आ डटा। दोनों ओर से भयानक युद्ध हुआ। वीर प्राणों का मोह छोड़कर युद्ध करने लगे। इस युद्ध में इन्द्र के पुत्र जयन्त ने राक्षसवंशी माल्यवान के पुत्र श्रीमाली को मार डाला। इन्द्र के लोकपालों को कुम्भकर्णादि वीरों ने नागपाश से बांध लिया। तब इन्द्र और रावण में शस्त्रास्त्रों और विद्याओं से भयानक युद्ध हुआ। दोनों ही वीर थे। दोनों ने एक दूसरे के शस्त्रास्त्र और विद्यायें बेकार कर दिये। एक दिन युद्ध करते हुए रावण बड़ी फुर्ती से अपने त्रैलोक्य-मण्डन हाथी से उछलकर इन्द्र के ऐरावत हाथी पर पहुंच गया और इन्द्र जब तक सम्हले, तब तक रावण ने उसे नागपाश में बांध लिया। देव सेना पराजित होकर भाग गई। रावण की जय-जयकार होने लगी। रावण ने माली और श्रीमाली की मृत्यु का बदला चुका दिया।

रावण विजयार्ध की दोनों श्रेणियों को जीत कर मार्ग के सारे राजाओं को जीतता हुआ लंका लौटा। वहां आकर उसने इन्द्र, सोम, यम आदि को कारागार में डाल दिया। तब इन्द्र का पिता राजा सहस्रार प्रजा के अनुरोध को मानकर रावण के पास आया और इन्द्र को छोड़ देने का आग्रह किया। रावण ने सहस्रार का यथोचित सम्मान किया और हाथ जोड़कर बोला—आप जो आज्ञा देंगे वही होगा। और लोकपालों से विनोद में हंसते हुए बोला—इन्द्र जब मेरा दास बनकर गांव के गवों की रखवाली करेगा, तब मैं उसे छोड़ दूंगा। इसके अतिरिक्त वायु मेरे यहां झाड़ू दे, यम पानी भरे, कुबेर मेरे हार की रक्षा करे, अग्नि रसोई बनावे तथा देवगण घड़ों में पानी भरकर लंका के बाजारों में छिड़काव करें तो मैं सबको छोड़ दूंगा, अन्यथा नहीं।

यह विनोद बड़ा मर्मभेदी था। लोकपाल सुनकर लज्जा से अवनत मुख हो गये। तब रावण ने सबको मुक्त कर दिया और स्नान भोजन कराके इन्द्र से बोला—आज से तुम मेरे चौथे भाई हो। तुम यहां लंका में रहकर राज्य करो और मैं रथनूपुर चला जाऊंगा। फिर सहस्रार से बोले—आप हमारे पिता तुल्य हैं। इन्द्र मेरा चौथा भाई है। इसका इन्द्र पद और लोकपालों का पद यथापूर्व रहेगा। दोनों श्रेणियों पर इसका ही अधिकार रहेगा। यदि यह और भी राज्य चाहे तो ले ले। आप चाहे यहां विराजें या रथनूपुर, दोनों आपकी ही हैं।

इन वचनों से सहस्रार अत्यन्त सन्तुष्ट हो इन्द्र आदि सहित वहां से चलकर रथनूपुर आये। किन्तु मान भंग के कारण इन्द्र और लोकपालों का मन व्यथा से भर गया था। उनका मन किसी काम में न लगता था। इन्द्र निरन्तर संसार के स्वरूप और संपत्ति की क्षणभंगुरता के चिन्तन में डूबा रहता। अन्त में एक दिन वह पुत्र को राज्य-भार देकर लोकपालों और अनेक राजाओं के साथ दिगम्बर मुनि बन गया और घोर तपस्या करके संसार से मुक्त हो गया।

रावण को चक्ररत्न तो पहले ही प्राप्त हो चुका था। अब उसने दिग्विजय करना प्रारम्भ किया। वह प्रभंजन के वेग से चला। राजा लोग उपहार देकर उसका स्वागत करते और उसकी आधीनता स्वीकार कर लेते थे। किन्तु जो उसकी आधीनता स्वीकार नहीं करते थे, उनको वह पराजित करके कठोर दण्ड देता था। इस प्रकार अठारह वर्ष में उसने भरत-क्षेत्र के तीनों खण्डों को जीत लिया और अर्धचक्री बनकर वह लंका में रहकर शासन करने लगा।

रावण के चरित्र का एक उज्ज्वल पहलू

रावण चरित्रनिष्ठ धार्मिक व्यक्ति था। वह परस्त्री की मन में भी कभी वांछा नहीं करता था। जब वह इन्द्र को जीतने चला और इन्द्र द्वारा नियुक्त राजा नलकुबेर के नगर दुर्लंघ्यपुर पहुँचा तो वहाँ मायामय कोट को नहीं लाँघ पाया। उसने अनेक प्रयत्न किये, नाना उपाय किये। किन्तु नाम के अनुरूप दुर्लंघ्यपुर दुर्लंघ्य ही रहा। इस प्रकार उसे वहाँ पड़े पड़े छः माह हो गये। वह बड़ा चिन्तातुर हो गया –यों कब तक यहाँ पड़ा रहा जा सकता है और बिना इसे जीते आगे भी कैसे बढ़ा जा सकता है। पीछे लौटना रावण के स्वभाव के विरुद्ध था।

रावण की कीर्ति का सौरभ नलकुबेर की पटरानी रम्भा के कानों में भी पड़ा। वह अपने स्वयंवर के समय से ही रावण में अनुरक्त थी, किन्तु स्वयंवर के समय रावण पहुँच नहीं पाया था, अतः मजबूरन रम्भा ने नलकुबेर के गले में वरमाला डाल दी थी। किन्तु अब रावण को अपने निकट आया जानकर उसका सुप्त प्रेम पुनः जाग उठा। उसने अपने मन की बात अपनी सखी और दासी चित्रला से कही और उससे यह भी कह दिया कि अगर तू मुझे जीवित देखना चाहती है तो कोई उपाय कर, जिससे मैं रावण से मिल सकूँ। चित्रला उसे आश्वासन देकर गुप्त मार्ग से रावण के कटक में पहुँची और रावण से मिलकर उसने अपनी स्वामिनी का अभिप्राय निवेदन किया। रावण ने स्पष्ट शब्दों में कह दिया—'भद्रे! मैं परस्त्री से कभी समागम नहीं करता। यह बड़ा निंद्य कर्म है।' चित्रला निराश होकर वापिस जाने लगी तो रावण के लघु भ्राता विभीषण ने जो उसका मन्त्री भी था, रावण को समझाया—'आर्य! आपको थोड़ा असत्य बोलकर भी इस समय दासी की बात स्वीकार कर लेनी चाहिये। इससे रम्भा आपको कोट की चाबी दे देगी। रावण ने बड़े अनमने भाव से दासी को बुलाकर कह दिया—तू अपनी स्वामिनी से जाकर कह देना कि मैं उनसे अवश्य मिलूँगा, किन्तु चोरों की तरह नहीं। जब मैं नगर में पहुँचूँगा, तब मिलूँगा।

दासी प्रसन्न होकर लौट गई और आकर रम्भा को सब बातें बता दीं। रम्भा अत्यन्त कामासक्त हो उठी और उसने शालिका नाम की विद्या रावण के पास भेज दी, जिसके द्वारा रावण नगर के भीतर पहुँच गया और नलकुबेर को बन्दी बना लिया।

जब नलकुबेर को राजसभा में रावण के समक्ष उपस्थित किया गया तो रावण ने रम्भा को भी बुलाया। रम्भा पुलकित होकर आशा संजोये रावण के निकट पहुँची तो रावण ने कहा—'माता!' उस अप्रत्याशित संबोधन पर रम्भा चौंकी तो रावण बोला— तुमने मुझे विद्या दी है, अतः तुम मेरी गुरुआणी हो। और गुरुआणी माता के समान होती है। पर पुरुष की कामना करना महापाप है। तुम अपने पति नलकुबेर में अनुरक्त रहो। तुमने मुझे विद्या दी है, अतः मैं तुम्हारे लिये तुम्हारे पति को मुक्त करता हूँ।' यों कहकर उसने नलकुबेर को मुक्त कर दिया। रम्भा बड़ी लज्जित हुई।

यह रावण के महान् चरित्र का एक उज्वल पक्ष है, जिसको लोगों ने समझा नहीं या उपेक्षा की है।

बाली द्वारा रावण का पराभव

किष्किंधा नगर के वानरवंशी राजा सूर्यरज और उसकी रानी चन्द्रमालिनी के बाली नामक पुत्र हुआ। वह महा बलवान, धार्मिक था। उसके कुछ समय पश्चात् सुग्रीव नामक पुत्र और श्रीप्रभा नाम की कन्या उत्पन्न हुई। इसी प्रकार किष्कुपुर नगर के राजा यक्षरज और उसकी रानी हरिकान्ता के नल और नील नामक दो पुत्र हुए। सूर्यरज के पश्चात् बाली अपनी स्त्री ध्रुवा के साथ राज्य शासन करने लगा।

बाली सम्यग्दृष्टि था। उसकी प्रतिज्ञा थी कि देव, गुरु और शास्त्र के अतिरिक्त किसी को नमस्कार नहीं

करूँगा। यह अभिमान की बात नहीं थी, बल्कि यह तो उसके धर्म का एक अनिवार्य अंग था। अतः वह रावण के राज्य दरबार में नहीं जाता था। क्योंकि वहाँ जाने पर रावण को नमस्कार करना पड़ता, न करता तो व्यर्थ में युद्ध होता। रावण ने समझा कि बाली मुझसे विमुख हो गया है। अतः उसने बाली के पास दूत भेजा। दूत ने आकर बाली से कहा—मेरे स्वामी रावण ने आपसे कहलवाया है कि हमने तुम्हारे पिता सूर्यरज को यम से छुड़ाकर किष्किंधा का राज्य दिया था। तबसे हम दोनों में प्रेम चला आ रहा है। किन्तु तुम मुझसे विमुख हो गये हो। अतः तुम आकर मुझे नमस्कार करो और अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह मेरे साथ कर दो, जिससे हमारा प्रेम बना रहे, अन्यथा तुम युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।

बाली ने दूत की बात स्वीकार नहीं की और युद्ध के लिए तैयार हो गया। किन्तु मंत्रियों ने उसे समझाया —'महाराज! व्यर्थ युद्ध करके क्यों हिंसा का पाप मोल लेते हो और फिर रावण बड़ा बलवान् है। वह अर्धचक्री है। उससे जीत पाना कठिन है।' किन्तु बाली बोला—'मैं रावण को चूर-चूर कर सकता हूँ।' फिर उसने सोचा—वास्तव में इस क्षणभंगुर राज्य के लिए युद्ध करना बुद्धिमानी नहीं है। और यों सोचकर वह राजपाट छोड़कर दिगम्बर मुनि हो गया और वनों में जाकर तपस्या करने लगा।

रावण को जब दूत ने आकर सब समाचार बताये तो वह क्रुद्ध हो उठा और चतुरंगिणी सेना सजाकर बाली का मानमर्दन करने किष्किंधापुर आ पहुँचा। सुग्रीव ने—जो बाली के पश्चात् राजा हो गया था—रावण की अगवानी की और अपनी बहन श्रीप्रभा का विवाह रावण के साथ कर दिया तथा उसकी अनुमति से राज्य करने लगा।

एक बार रावण पुष्पक विमान में नित्यालोकपुर से लौटता हुआ लंका जा रहा था कि उसका विमान एकाएक रुक गया। तब उसने मारीच से कहा—देखो तो, मेरा विमान किसने रोक लिया है। मारीच ने नीचे जाकर देखा कि एक तपस्वी मुनिराज कैलाश पर्वत पर तपस्या कर रहे हैं। उन्हीं के प्रभाव से विमान रुक गया है। उसने यह बात रावण से जाकर कही। रावण मुनिराज के दर्शन करने नीचे उतरा किन्तु वहाँ बाली मुनि को तपस्या करते हुए देखकर उसका पुराना क्रोध उमड़ पड़ा और बोला—'अरे मुनि! तूने अब भी वैर नहीं छोड़ा जो मेरा विमान रोक लिया है। मैं तुझे अभी इसका दण्ड देता हूँ।' यों कहकर वह विद्या के बल से पर्वत के नीचे घुस गया और पर्वत को उठाने लगा। पर्वत पर रहने वाले पशु भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। वृक्ष टूट-टूट कर गिरने लगे। देवपूजित जिन मन्दिर हिल उठे। तब मुनिराज ने अवधिज्ञान से जाना कि यह कुकृत्य दशानन का है। उसके इस कृत्य से भरत चक्रवर्ती द्वारा निर्मित विशाल मन्दिर भी नष्ट हो जायेंगे। मैं पुण्योपार्जन के कारणभूत इन मन्दिरों की रक्षा करूँगा।

यों सोचकर बाली मुनिराज ने पैर के अंगूठे से पर्वत को दबाया। उसके भार से दशानन पिचने लगा। उसके सारे अंग पीड़ा से सिकुड़ गये। वह भयानक पीड़ा के कारण इतना जोर से रोने लगा कि जगत में तबसे उसका नाम रावण विख्यात हो गया। उसके रोने का शब्द सुनकर उसकी रानियाँ आईं और मुनिराज के चरणों में गिरकर पति की प्राण-भिक्षा मांगने लगीं। तब मुनिराज ने दया करके अपना अंगूठा ढीला कर दिया। देवों ने पंचाश्चर्य की वर्षा की। रावण को भी बुद्धि आ गई और वह बाली के चरणों में गिर कर स्तुति करने लगा और क्षमा मांगने लगा।

इस काण्ड से लज्जित होकर रावण शिवगृह के चैत्यालय में गया और भगवान की पूजा करने लगा। वह भगवान की भक्ति में इतना बेसुध हो गया कि अपनी भुजाओं से उसने आंतें निकालीं और उन्हें वीणा की तरह बजाकर भगवान की स्तुति पढ़ने लगा। रानियाँ नृत्य करने लगीं।

उसकी भक्ति से प्रभावित होकर नागकुमार देवों का इन्द्र धरणेन्द्र वहाँ आया और बोला—'मैं तेरी भक्ति से बड़ा प्रसन्न हूँ। तू कोई वर मांग।' रावण बोला—'नागेन्द्र! भगवान की भक्ति से बढ़कर और क्या चीज तुम्हारे पास है जो मैं माँगूं।' किन्तु धरणेन्द्र ने कहा—'मेरे दर्शन निष्फल न हों अतः मैं तुम्हें यह शक्ति देता हूँ। इससे देव और दानव तक पराजित हो जाते हैं।' यों कहकर उसने रावण को शक्ति प्रदान की। रावण एक महीने तक कैलाश पर्वत पर रहा। उसने अपने कृत्य का वहाँ रहकर प्रायश्चित्त किया और फिर लंका को लौट गया।

बाली मुनि ने कर्मों का नाश कर मुक्ति प्राप्त की।

ज्योतिपुर नरेश वह्निशिख की पुत्री सुतारा थी। वह बड़ी रूपवती थी। उसकी याचना चक्रपुर के राजकुमार साहसगति और सुग्रीव दोनों ने की थी। किन्तु वह्निशिख ने साहसगति को अल्पायु जानकर अपनी पुत्री का विवाह सुग्रीव के साथ कर दिया। उससे दो पुत्र उत्पन्न हुए—अंग और अंगद। किन्तु साहसगति के मन से सुतारा निकल नहीं सकी। वह उसे प्राप्त करने की निरन्तर चेष्टा करता रहा। इसके लिए वह रूप-परिवर्तिनी शेमुषी विद्या का साधन करने लगा।

रावण द्वारा व्रत-ग्रहण

एक बार रावण अपने परिवार के साथ सुमेरु पर्वत पर जिन मन्दिरों के दर्शनों के लिए गया हुआ था। वहाँ से लौटते हुए विभक्त पर्वत पर उसने अपार भीड़ देखी। पूछने पर मारीच से ज्ञात हुआ कि पर्वत पर अनन्तवीर्य मुनि को आज ही केवलज्ञान हुआ है। यह सुनकर रावण बड़े भक्ति भाव से विमान से उतरा और केवली भगवान के दर्शन किये। भगवान का उपदेश सुनकर अनेक लोगों ने नियम व्रत लिए। उस समय किसी ने रावण से भी कहा कि आप भी इस समय कुछ व्रत लीजिये। रावण बोला—'मेरा मन सदा पापी रहता है अतः मैं कोई व्रत नहीं ले सकता। फिर भी मैं एक व्रत लेना चाहता हूँ कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, मैं उसके साथ बलात्कार नहीं करूँगा।' यह कह कर उसने गुरु से यह व्रत ले लिया। कुम्भकर्ण और विभीषण ने गृहस्थ के व्रत लिए।

हनुमान का जन्म

विजयार्ध की दक्षिण श्रेणी में आदित्यपुर नाम का एक नगर था। वहाँ के राजा प्रह्लाद और रानी केतुमती थी। उनके पवनकुमार नाम का एक पुत्र था। एक बार राजा प्रह्लाद अपने परिवार सहित कैलाश पर्वत पर तीर्थ-वन्दना को गये। उसी समय महेन्द्रपुर के राजा महेन्द्र अपनी रानी मनोवेगा के साथ तीर्थयात्रा को आये। दोनों राजाओं में परस्पर परिचय और मित्रता हो गई। राजा महेन्द्र ने प्रह्लाद से निवेदन किया कि मेरे अंजना नाम की एक कन्या है। मेरा विचार आपके पुत्र पवनकुमार के साथ उसका सम्बन्ध करने का है। राजा प्रह्लाद ने भी प्रसन्नतापूर्वक इस सम्बन्ध की स्वीकृति दे दी और सम्बन्ध पक्का कर दिया। दोनों ओर से विवाह की तैयारियाँ होने लगीं।

इसी बीच पवनकुमार ने भी अंजना के रूप सौन्दर्य की प्रशंसा सुनी। वह उसे देखने को व्याकुल हो गया और अपने मित्र प्रहस्त से बोला—मित्र! यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहते हो तो मुझे अंजना को एक बार दिखा दो। प्रहस्त ने वाद-विवाद के बाद अंजना को उसी रात को दिखाना स्वीकार कर लिया।

रात्रि को विमान में बैठकर दोनों मित्र महेन्द्रपुर नगर में अंजना के महल पर उतरे और सातवीं मंजिल पर झरोखे में से उन्होंने अंजना को देखा। उसके अनिंद्य सौंदर्य को देखकर पवनकुमार प्रसन्न हो गया। उस समय अंजना सखियों से घिरी बैठी थी और सखियाँ उससे विनोद कर रही थीं। कोई पवनकुमार के रूप-गुणों की प्रशंसा कर रही थी, तभी मिश्रकेशी नाम की सखी ने पवनकुमार की निन्दा की। अंजना लज्जावश मौन बैठी रही। पवनकुमार ने अपनी निन्दा सुनी तो वह बड़ा क्रोधित होकर अंजना को मारने उठा—क्यों उसने मेरी निन्दा सुन ली। वह अवश्य पर पुरुष में आसक्त है। किन्तु प्रहस्त ने उसे समझा बुझाकर शान्त किया। किन्तु अंजना के प्रति दुर्भाव लेकर पवनकुमार प्रहस्त के साथ लौट आया। उसका क्रोध शान्त नहीं हुआ। उसने दूसरे दिन महेन्द्रपुर पर चढ़ाई करने के उद्देश्य से रणभेरी बजा दी और महेन्द्रपुर की ओर सेना लेकर चल दिया। महेन्द्र ने आकर कुमार के पैर पकड़ लिए। उसके पिता ने भी समझा-बुझाकर शान्त किया। पवनकुमार ने मन में सोचा कि इस समय तो इनकी बात मान लेनी चाहिए। विवाह के बाद उस दुष्टा को जन्म भर के लिए मैं छोड़ दूँगा। इस तरह सोचकर वह युद्ध से निवृत्त हो गया। यथासमय दोनों का विवाह हो गया और विदा होकर आदित्यपुर आ गये।

नगर में वापिस आने पर कुमार ने अंजना को महल के एक एकान्त कक्ष में रख दिया। वह उससे न बात करता, न उसकी ओर देखता ही था। अंजना पति के इस अकारण क्रोध से बड़ी दुखी रहती थी और दिन-रात विलाप किया करती थी। घर के सभी लोग भी अंजना के दुःख से दुखी रहते थे।

इसी बीच राजा वरुण से रावण का युद्ध छिड़ गया। इस युद्ध में वरुण के पुत्रों ने खरदूषण को पकड़

लिया। तब रावण ने सब आधीन राजाओं को सेना लेकर आने का निमन्त्रण भेजा। प्रह्लाद के पास भी निमन्त्रण-पत्र आया। वह अब सेना लेकर जाने लगा तो पवनकुमार अपने पिता को रोककर बोला—युवक पुत्र के होते हुए वृद्ध पिता का युद्ध के लिए जाना उचित नहीं है। और सेना लेकर चल दिया। चलते समय अंजना द्वार पर खंभे के सहारे खड़ी थी। किन्तु पवनकुमार ने उसकी ओर देखा तक नहीं और वहाँ से चल दिया।

वहाँ से चल कर वह मानसरोवर पहुँचा और उसके तट पर ही पड़ाव डाल दिया। सन्ध्या के समय वह अपने मित्र के साथ तट पर बैठा हुआ था। उसने देखा कि एक चकवी अत्यन्त दुखी हो रही है। उसने मित्र से इसका कारण पूछा। मित्र बोला—यह रात्रि में पति-वियोग के कारण दुखी है। यह सुनते ही पवनकुमार सोचने लगा—एक पक्षी केवल रात्रि भर के लिए अपने पति के वियोग में इतनी दुखी है, तो अंजना मेरे वियोग में कितनी दुखी होगी जिसे मैंने बाईस वर्ष से त्याग दिया है।

यह विचार आते ही मित्र से बोला—मित्र! मैं अंजना के वियोग को अब एक पल भर के लिए भी सह नहीं सकता। यदि तुम मेरा जीवन चाहते हो तो मुझे अंजना से मिला दो। मित्र ने उसे बहुत समझाया कि इस समय जाने से लोक में बड़ी हँसी होगी। किन्तु वह अपने आतुर स्वभाव के कारण जिद पर अड़ गया। आखिर प्रहस्त रात्रि होने पर गुप्त रूप से उसे विमान पर लेचला और वे शीघ्र ही अंजना के महल पर जा उतरे। प्रहस्त ने अन्दर जाकर अंजना को पवनकुमार के आने की सूचना दी। अंजना और पवनकुमार बड़े प्रेम से मिले। और पवनकुमार रातभर उसके पास रहे। प्रातः जब पवनकुमार जाने लगे तो अंजना हाथ जोड़ कर बोली—नाथ! मैं अभी ऋतुमती होकर चुकी हूँ। संभव है, मुझे गर्भ रह जाय। अब तक आप मुझसे बोलते नहीं थे। ऐसी दशा में लोग मेरा अपवाद करेंगे। पवनकुमार बोला—'देवि! चिन्ता मत करो। तुम्हारे गर्भ प्रकट होने से पहले ही मैं यहाँ लौट आऊँगा। फिर भी मैं अपने नाम की यह मुद्रिका दिये जाता हूँ। उससे अपवाद का अवसर नहीं आयेगा।' यों कहकर और मुद्रिका देकर वह अपने मित्र के साथ वहाँ से जैसे गुप्त रूप से आया था, वैसे ही गुप्त रूप से चला गया।

कुछ दिनों में अंजना के गर्भ प्रकट होने लगा। उधर युद्ध लम्बा खिंच जाने से पवनकुमार जल्दी नहीं लौट सका। अंजना के यह गर्भ देखकर उसकी सास केतुमती को संदेह हुआ। उसने अंजना से पूछा तो अंजना ने रात में पवनकुमार के आने की सारी घटना बतादी और उसके प्रमाण में उसने अपने पति द्वारा दी हुई मुद्रिका भी दिखाई। किन्तु केतुमती को विश्वास नहीं हुआ कि उसका पुत्र जिससे बाईस वर्षों तक बोला तक नहीं, उससे मिलने वह चोरी से रात में छिपकर क्यों आवेगा। अवश्य यह इस दुश्चरित्र स्त्री का पापाचार है। अंजना ने अपनी दासी वसन्तमाला की भी साक्षी दिलाई। किन्तु केतुमती का संदेह बढ़ता ही गया। उसने क्रोध में भर कर गर्भवती अंजना को कमर

बाईस घड़ी की भूल

बाईस वर्ष का दुःख

राजा सुकंठ के दो रानियाँ थीं—हेमोदरी और लक्ष्मी। लक्ष्मी भगवान की पूजा-उपासना में लगी रहती। एक दिन सौतिया डाह से हेमोदरी ने भगवान की प्रतिमा छुपा दी। लक्ष्मी दूसरे दिन प्रतिमा को न देखकर बड़ी दुखी हुई। उसने आहार-जल का त्याग कर दिया। संयोगवश संयमश्री नामक एक आर्यिका महल में पधारी और लक्ष्मी के मुख से भगवान की प्रतिमा की चोरी की बात सुनकर वे सीधी हेमोदरी के पास पहुँचीं। हेमोदरी ने आर्यिका को भक्तिपूर्वक नमस्कार किया और उत्तम आसन पर बैठाया। तब आर्यिका बोली—पूर्व पुण्य से तुझे राजसंपदा और वैभव मिला। तू इस जन्म में भी धर्म कर। तूने द्वेषवश भगवान की प्रतिमा छुपा दी है, वह दे दे। प्रतिमा चुराने जैसा पाप संसार में दूसरा नहीं है। इससे नरक गति में जाना पड़ता है। हेमोदरी यह सुनकर भयभीत हो गई और उसने प्रतिमा लाकर दे दी, बड़ा प्रायश्चित्त किया, पूजा और प्रभावना की।

हेमोदरी ने केवल बाईस घड़ी तक भगवान की प्रतिमा को छिपाये रखा था। उसका यह फल भोगना पड़ा कि उसे अंजना के जन्म में बाईस वर्ष तक पति का वियोग सहना पड़ा।

में ओर से लात मारी और क्रोध में भर कर उसे आदेश दिया कि तू इसी वक्त मेरे घर से निकल जा और अपना मुंह कहीं जाकर काला कर। राजा प्रह्लाद ने अपनी स्त्री की इस राय से सहमति दिखाई। केतुमती ने अंजना के साथ बसन्तमाला को भी घर से निकाल दिया।

वहाँ से निकल कर दोनों निरपराधिनी अबलायें अपने कर्मों को दोष देती हुई और लोकनिन्दा और लोक-उपहास का भार ढोती हुई चल दीं। चलते-चलते उनकी दशा बुरी हो गई। वे अन्त में अपने पिता महेन्द्र के महलों पर पहुँचीं। द्वारपाल ने उनसे सारा समाचार ज्ञात कर महाराज को समाचार दिया। किन्तु जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि कुकर्म के कारण अंजना को उसके घर से निकाल दिया है तो उन्होंने भी अपने घर में स्थान देने से इनकार कर दिया। वहाँ से निराश होकर अंजना अपने परिवारी और सम्बन्धियों के द्वार पर भी गई। किन्तु उसे किसी ने आश्रय नहीं दिया।

सब ओर से निराश होकर अंजना अपनी सखी के साथ वन को चलदी। राह में उसे अपार कष्ट हुए। वह दुःख से बार बार विलाप करने लगती, किन्तु सखी उसे धीरज बंधाती। यों चलते चलते वे एक पर्वत की गुफा के निकट पहुँचीं। वहाँ उन्होंने एक मुनि को ध्यान लगाये बैठे देखा। मुनि को देख कर दोनों को सन्तोष हुआ। उन्होंने मुनि को नमस्कार किया। मुनि महाराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया और उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा 'पुत्री! तू दुःख मत कर। तेरा पुत्र लोकपूज्य होगा और पति से भी शीघ्र ही तेरा मिलन होगा।'

मुनि वहाँ से अन्यत्र चले गये और दोनों सखी उस गुफा में रहने लगीं तथा जंगल के फलों और झरने के जल से अपना निर्वाह करने लगीं। एक दिन एक भयानक सिंह आया और गुफा के द्वार पर भयंकर गर्जना करने लगा। अंजना उसे सुनकर अत्यन्त भयभीत हो गई। तब उसके शील और पुण्य के प्रभाव से एक देव ने अष्टापद का रूप धारण कर सिंह को भगा दिया।

नौ मास पूर्ण होने पर अंजना के पुत्र हुआ। पुत्र महनीय पुण्य का अधिकारी था। उसके तेज से गुफा में प्रकाश हो गया। अंजना पुत्र का मुख देख कर एक बार तो अपने सारे दुःखों को भूल गई। दोनों सखियाँ बड़े दुलार से उसका पालन करने लगीं। धीरे-धीरे वह लोकोत्तर पुत्र चन्द्रमा की तरह बढ़ने लगा।

एक दिन बसन्तमाला ने आकाश में एक विमान देखा। उसे देखकर अंजना भयभीत हो गई - कहीं कोई शत्रु मेरे पुत्र को मारने तो नहीं आया। इस आशंका से वह विलाप करने लगी। उसके विलाप का स्वर सुन कर विद्याधर ने विमान नीचे उतारा और अपनी स्त्रियों सहित वह दोनों सखियों के पास गया। वहाँ जाकर उसने उनका परिचय पूछा। बसन्तमाला ने सारी घटना सुनाकर परिचय दिया। परिचय सुनकर वह विद्याधर बोला— अरे यह अंजना तो मेरी भानजी है। बहुत दिन से इसे नहीं देखा था। अतः मैं इसे पहचान नहीं सका। मेरा नाम प्रतिसूर्य है। मैं हनुरुह द्वीप का रहने वाला हूँ। फिर अंजना को उसने उसके बचपन की अनेक घटनाएँ सुनाकर सान्त्वना दी। और बालक के लग्न देखकर बोला—बालक का जन्म चैत्र कृष्णा अष्टमी को रात्रि के पिछले प्रहर में श्रवण नक्षत्र में हुआ है। अतः यह सुखी और पराक्रमी होगा।' फिर वह विमान में बैठा कर सबको ले चला।

विमान में मोतियों की झालरें टंगी हुई थीं। मामा-भानजी बातों में निमग्न थे। बालक माता की गोद में बैठा हुआ हिलती हुई मालाओं को पकड़ने को बार-बार हाथ मारता था। एक बार उसने ज्यों ही माला पकड़ने को जोर मारा तो माता की गोद से खिसक कर विमान में से नीचे जा गिरा। बालक के गिरते ही अंजना जोरों से चीख उठी। सभी लोग इस आकस्मिक मर्मान्तक विपत्ति से त्रस्त हो उठे। विमान को दुःशंका के साथ नीचे उतारा किन्तु वहाँ सबने आश्चर्य के साथ देखा कि बालक जिस शिला पर गिरा था, वह शिला तो छार छार हो गई है। किन्तु बालक के कोई चोट नहीं आई है और वह मजे में पड़ा पड़ा अंगूठा चूस रहा है। अंजना ने बड़ी पुलक से पुत्र को उठा लिया और छाती से चिपटा कर चूमने लगी। सब लोगों को विश्वास हो गया कि जब बचपन में इसमें ऐसी दैवी शक्ति है तो यह निश्चय ही चरम शरीरी है।

सब लोग पुनः विमान में बैठे और आनन्द के साथ हनुरुह द्वीप में पहुँचे। वहाँ अंजना और उसके पुत्र का गाजे बाजे के साथ स्वागत हुआ और पुत्र-जन्मोत्सव बड़े धूमधाम और समारोह के साथ मनाया गया। उसका

नाम हनुमान रक्खा गया। बालक वहाँ रहकर धीरे धीरे बड़ा होने लगा।

उधर रावण के पास पवनकुमार अपनी सेना के साथ पहुँचा और वरुण से भयानक युद्ध हुआ। युद्ध में पवनकुमार ने बड़ी वीरता दिखाई। उसने वरुण को बन्दी कर लिया। वरुण को अन्त में खरदूषण को छोड़कर रावण के साथ सन्धि करनी पड़ी।

युद्ध समाप्त होने पर प्रशंसा और सम्मान पाकर पवनकुमार अपने नगर की ओर लौटा। अब उसे अपनी प्राणप्रिया की याद सताने लगी। नगर में पहुँचने पर अपने विजयी राजकुमार का नगरवासियों ने हार्दिक स्वागत किया। उसे तो अंजना से मिलने की शीघ्रता थी, वह स्वागत-सत्कार से निबट कर सीधा अंजना के महल में पहुँचा। किन्तु महल को सूना पाकर वह व्याकुल हो गया। वह सारे कक्षों में अंजना का नाम लेता हुआ फिरने लगा। उसने दास दासियों से अंजना के बारे में पूछा, किन्तु सब नीचा सिर किये चुप हो गये। उसके मित्र प्रहस्त ने अंजना के बारे में सब बातें पता लगाकर पवन से कहीं। तत्काल दोनों मित्र विमान से महेन्द्रपुर आये। वहाँ भी अंजना को न पाकर वह वहाँ से उसे ढूँढने चल दिया। प्रहस्त को उसने समाचार देने के लिए आदित्यपुर भेज दिया और स्वयं वनों में ढूँढने लगा। वह अंजना के वियोग में बिलकुल विक्षिप्त हो गया, न उसे खाने की सुध रही, न जल की चिन्ता। वह अंजना-अंजना चिल्लाता फिरता था।

उसके पिता प्रल्हाद पुत्र के समाचार सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो गये। उन्होंने चारों ओर अंजना और पवनकुमार को ढूँढने अपने आदमी भेज दिये और स्वयं भी महेन्द्रपुर जाकर और महेन्द्र को लेकर ढूँढने चल दिये। जब प्रतिसूर्य के पास पवनकुमार के बारे में समाचार पहुँचे तो अंजना अत्यन्त व्याकुल होकर रोने लगी। प्रतिसूर्य ने उसे धैर्य बंधाकर कहा—बेटी! चिन्ता मत कर, मैं पवनकुमार को ढूँढकर आज ही यहाँ ले आऊँगा। यों कहकर वह कुमार को ढूंढने चल दिया। हनुरुह और राजा प्रह्लाद आदि ढूँढते-ढूँढते उसी वन में पहुँचे और पवनकुमार को पाकर बड़े प्रसन्न हुए। किन्तु पवनकुमार ने किसी से कोई बात नहीं की। वह चुपचाप बैठा रहा। तब प्रतिसूर्य ने उसे अंजना के सब समाचार सुनाये। फलतः पवनकुमार अत्यन्त आह्लादित होकर प्रतिसूर्य से गले मिला। सब लोग प्रसन्नतापूर्वक हनुरुह द्वीप आये और अंजना को पाकर सब लोग बड़े हर्षित हुए। कुछ समय पश्चात् सब लोग लौट गये किन्तु पवनकुमार वहीं रह गये।

धीरे-धीरे हनुमान यौवनसम्पन्न हुए और उन्होंने अनेक विद्याओं का साधन किया। एक बार पुनः रावण का वरुण के साथ युद्ध हुआ। रावण का निमन्त्रण पाकर सभी राजा अपनी सेनायें लेकर रावण के पास पहुँचे। पवनकुमार और हनुमान भी गये। हनुमान के रूप और यौवन को देखकर रावण बड़ा प्रसन्न हुआ और बड़े प्रेम से हनुमान से मिला।

दोनों पक्षों में भयानक युद्ध हुआ। इस युद्ध में हनुमान ने असाधारण वीरता दिखाई। उन्होंने वरुण के सौ पुत्रों को अपनी लांगूल विद्या से बांध लिया और रावण ने वरुण को नागपाश से बांध लिया। इस प्रकार हनुमान के असाधारण शौर्य के कारण रावण की विजय हुई।

रावण ने प्रसन्न होकर अपनी बहन चन्द्रनखा की पुत्री अनंगकुसुमा का विवाह हनुमान के साथ कर दिया और कुण्डलपुर का राज्य देकर सब विद्याधरों का प्रमुख बना दिया। बाद में सुग्रीव और किन्नरपुर के राजा ने भी अपनी कन्याओं का विवाह हनुमान के साथ कर दिया।

श्री रामचन्द्र आदि का जन्म

एक दिन राजा दशरथ की रानी अपराजिता (कौशल्या) रात्रि में सुखपूर्वक सो रही थी। उसने रात्रि के पिछले पहर में चार स्वप्न देखे। वह उठी और अपने पति के पास जाकर और उनके चरणों में नमस्कार करके बोली—नाथ! मैंने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में स्वप्न में हाथी, सिंह, सूर्य और चन्द्रमा देखे हैं।' राजा सुनकर बोले—'देवि! तुम्हारे अत्यन्त प्रभावशाली, सुखी और शत्रुओं का दमन करनेवाला पुत्र उत्पन्न होगा। उसी रात्रि को अह्म स्वर्ग से चलकर एक जीव रानी के गर्भ में आया। तबसे रानी का मन भगवान की पूजा में अधिक लगने लगा।

कुछ दिनों के बाद सुमित्रा ने भी रात्रि के पिछले प्रहर में पाँच स्वप्न देखे—सिंह, पर्वत पर रक्खा हुआ सिंहासन, गम्भीर समुद्र, उगता हुआ सूर्य और मांगलिक चक्ररत्न। रानी ने उठकर पति से स्वप्नों का फल पूछा तो राजा ने बताया—देवि ! तुम्हारे गर्भ में चक्ररत्न से त्रिखण्ड को विजय करने वाला यशस्वी पुत्र उत्पन्न होगा। रानी स्वप्न का फल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई।

नौ माह पूर्ण होने पर अपराजिता के फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी को सूर्य के समान कान्ति वाला शुभलक्षण पुत्र उत्पन्न हुआ। पुत्र के वक्षस्थल पर पद्म चिन्ह था। अतः बालक का नाम पद्मनाभ (रामचन्द्र) रक्खा गया। सुमित्रा ने भी शुभ लक्षणों वाले लक्ष्मण पुत्र को जन्म दिया। उस समय शत्रुओं के घर में भयकारी अपशकुन हुए। सूर्य-चन्द्रमा के समान दोनों बालक क्रीड़ा करने लगे।

केकामती ने भरत नाम के पुत्र को जन्म दिया तथा सुप्रभा ने शत्रुघ्न को। चारों पुत्र इतने शोभित होते थे, मानों संसार को सहारा देने वाले चार स्तम्भ हों।

राजा ने ऐहिरुद्ध नामक एक विद्वान् ब्राह्मण को जो सब शस्त्र-शास्त्रों का ज्ञाता था, चारों राजकुमारों की शिक्षा-दीक्षा के लिये नियुक्त किया और अल्प समय में ही चारों पुत्र शस्त्र-शास्त्रों में निष्णात हो गये।

राजा जनक के भामण्डल और सीता का जन्म—मिथिला के राजा जनक की स्त्री विदेहा गर्भवती हुई। यथासमय विदेहा के युगल सन्तान उत्पन्न हुई-एक पुत्र और दूसरी पुत्री। पुत्र के उत्पन्न होते ही पूर्व जन्म के वैर के कारण एक देव उसे उठाकर ले गया और उसे आभूषण पहना कर तथा कानों में देदीप्यमान कुण्डल पहनाकर पृथ्वी पर लिटा गया।

चन्द्रगति नामक एक विद्याधर अपने विमान में आकाश मार्ग से जा रहा था। उसकी दृष्टि देदीप्यमान आभूषण पहने बालक पर पड़ी। वह नीचे उतरा और तेजस्वी बालक को देखकर वह उसे उठाकर अपने महलों में वापिस गया। वहाँ उसकी रानी पुष्पवती अपनी शय्या पर सो रही थी। राजा ने उस बालक को रानी की जंघाओं के बीच में रखकर रानी को जगाया और रानी से बोला-रानी ! उठो, तुम्हारे बालक उत्पन्न हुआ है। रानी ने उठकर उस बालक को देखा तो वह विस्मय में भरकर पूछने लगी-'यह सुन्दर बालक किसका है। मैं तो बांझ हूँ। आप क्यों मुझसे इस प्रकार हास्य करते हैं।' राजा बोला—'रानी! स्त्रियों के प्रच्छन्न गर्भ भी होता है। तुम्हारे भी ऐसा ही गर्भ था।' रानी को फिर भी पति के वाक्य पर विश्वास नहीं हुआ। वह पुनः पूछने लगी—'यदि यह बालक मेरे ही गर्भ से हुआ है तो इसके मनोहर कुण्डल कहाँ से आये।' अब राजा सत्य बात को छुपा नहीं सके और उन्होंने रानी को पुत्र मिलने की सारी घटना सुना दी और कहा—तुम अब इसे अपना ही पुत्र मानकर पालन करो और लोगों को भी यही बताना है कि तुम्हारे गूढ़ गर्भ था। तुमने ही इसको जन्म दिया है।

राजा की आज्ञा से रानी प्रसूतिगृह में गई। राजा ने सारे रथनूपुर नगर में पुत्र-जन्म के समाचार प्रचारित कर दिये और धूमधाम से पुत्र जन्मोत्सव मनाया। देदीप्यमान कुण्डल धारण करने के कारण बालक का नाम भामण्डल रक्खा गया। बालक धाय को सौंप दिया गया और अपने पुत्र की तरह ही उसका लालन-पालन होने लगा।

उधर मिथिलापुरी में राजकुमार के अपहरण का समाचार जानकर सारी प्रजा में शोक छा गया। रानी विदेहा पुत्र-शोक से विलाप करने लगी। राजा जनक ने रानी को धैर्य बंधाया—तुम चिन्ता क्यों करती हो। तुम्हारा पुत्र किसी ने हर लिया है। वह अवश्य जीवित है और एक न एक दिन तुम्हें अवश्य मिलेगा।' इसके पश्चात् राजा जनक ने अपने मित्र राजा दशरथ को यह समाचार भेज दिया। दोनों ने ढूंढने का बड़ा प्रयत्न किया किन्तु पुत्र नहीं मिला।

इधर जानकी धीरे धीरे बढ़ने लगी। उसकी बाल सुलभ लीलाओं को देखकर कुटुम्बी जन पुत्र-शोक को धीरे-धीरे भूलने लगे। जानकी के नेत्र कमल सदृश थे। वह अनिंद्य सौन्दर्य को लेकर अवतरित हुई थी। ऐसा लगता था, मानों कोई देवी ही पृथ्वी पर आ गई हो। आयु के साथ उसके गुण और सौन्दर्य भी बढ़ने लगा। वह अपने वचपन से ही पृथ्वी के समान क्षमाधारिणी थी। अतः लोग प्यार में उसे सीता (पृथ्वी) कहने लगे और बाद

में प्यार का यह नाम ही जगविख्यात हो गया। उसके अंग-प्रत्यंग इतने सुन्दर थे, मानो विधाता ने उसे सांचे में ही ढाला हो-चन्द्रमा के समान मुख, पल्लव के समान कोमल आरक्त हस्ततल, हंसिनी की सी चाल, मौलश्री के समान भीनी-भीनी मुख की सुगन्धि, कोमल पुष्पमाल सी भुजायें, केहरी के समान कटि, केले के स्तम्भ जैसी जंघायें; शची, रति और चक्रवर्ती की पटरानी का सौन्दर्य भी उसके समक्ष नगण्य लगता था। धीरे-धीरे वह सभी कलाओं और विद्याओं में पारंगत हो गई।

एक बार बर्बर देश के एक म्लेच्छ राजा ने राजा जनक के राज्य पर चढ़ाई कर दी। अपने राज्य को नष्ट-भ्रष्ट होते देखकर जनक ने दशरथ के पास एक दूत भेजकर सहायता मांगी। दशरथ ने राम और लक्ष्मण को चतुरंगिणी के साथ मिथिला भेज दिया। म्लेच्छों ने जनक और कनक दोनों भाइयों को बन्दी बनाया ही था कि दोनों राजकुमार मिथिला में पहुँच गये और म्लेच्छों से युद्ध करके दोनों भाइयों को मुक्त किया तथा म्लेच्छों को मार भगाया। तथा जनक को राज्य सौंप कर दोनों भाई वापिस अयोध्या आगये। राजा जनक राम की वीरता, सुन्दरता और गुणों से बड़े प्रभावित हुए। साथ ही उनके द्वारा किये गए उपकार को चुकाने की भावना भी उनके मन में बनी रहती थी। अतः उन्होंने निश्चय किया कि मैं अपनी पुत्री सीता का विवाह राम के साथ कर दूंगा।

धनुःपरीक्षा और राम-सीता का विवाह

राम को सीता प्रदान करने का जनक का संकल्प नारद ने भी सुना। वे उत्सुकतावश सीता को देखने मिथिलापुरी आये और जनक की आज्ञा लेकर अन्तःपुर में पहुँचे। उस समय सीता दर्पण में अपना मुख देख रही थी। दर्पण में नारद की दाढ़ी जटाओं वाली भयानक आकृति के पड़ते ही सीता डरकर भीतर भाग गई। नारद भी उसके पीछे-पीछे जाने लगे। द्वारपाल नारद को जानते नहीं थे। उन्होंने नारद को रोका। दोनों ओर से कलह होने लगी। एक अपरिचित व्यक्ति को अन्तःपुर में प्रवेश करने से रोकने के लिये शोर सुनकर और सिपाही एकत्रित हो गये और नारद को मारने दौड़े। नारद शस्त्रधारी सिपाहियों को देखकर भयभीत हो गये और आकाश मार्ग से उड़कर कैलाशपर्वत पर ही दम ली। जरा आश्वस्त हुए तो उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मैं सीता को देखने गया था। वहाँ मेरी यह दुर्गति हुई है। सीता ने ही मुझे पिटवाया है। इसके बदले में अगर सीता को दुःख न दिया तो मैं नारद ही काहेका।

मन में इस प्रकार सोचकर उन्होंने सीता का एक चित्रपट बनाया और रथनूपुर नगर में जाकर कुमार भामण्डल को वह चित्र दिखाया। चित्र देखते ही भामण्डल कामबाण से बिद्ध हो गया। उसकी दशा खराब हो गई। यह बात उसके पिता को ज्ञात हुई। पिता ने नारद से पूछा तो नारद ने कहा—'मिथिला के राजा जनक की सीता नाम की पुत्री है। वह अत्यन्त गुणवती, रूपवती और अनेक कलाओं में पारंगत है। वह तुम्हारे पुत्र के सर्वथा उपयुक्त है' राजा ने रानी से परामर्श किया और निश्चय किया कि यदि कन्या के पिता से कन्या की याचना करेंगे तो सम्भव है, वे न मानें। अतः किसी उपाय से जनक को यहाँ ले आना चाहिये। फलतः चन्द्रगति की आज्ञानुसार एक विद्याधर मिथिला गया और विद्या के बल से घोड़े का रूप धारण कर नगर में उपद्रव मचाने लगा। जब वह किसी प्रकार वश में नहीं आया तो राजा जनक स्वयं पहुँचे और घोड़े को वश में करके उस पर सवार हो गये घोड़ा जनक को लेउड़ा और रथनूपुर में आकर भूमि पर उतारा। वहाँ घोड़े से उतरकर जनक एक मन्दिर में जाकर बैठ गये।

विद्याधर ने राजा चन्द्रगति को समाचार दिया। चन्द्रगति वहाँ से सीधा मन्दिर में पहुँचा और जाकर जनक से परिचय किया और आदर सहित अपने महलों में ले आया। वहाँ आकर दोनों में बातचीत होने लगी। चन्द्रगति बोला—सुना है, आपके कोई कन्या है। मैं चाहता हूँ, आप उसका विवाह मेरे पुत्र के साथ कर दें। जनक बोले—मैंने अपनी कन्या तो अयोध्यापति दशरथ के पुत्र राम को देने का संकल्प कर लिया है। यों कह कर वे राम के गुणों और उनकी योग्यता की प्रशंसा करने लगे। इस पर चन्द्रगति जनक का हाथ पकड़ कर आयुधशाला में ले गया और बोला—आप राम की वीरता की बड़ी प्रशंसा कर रहे हैं। तो सुनिये। मेरे पूर्वज नमि विद्याधर को किसी समय धरणेन्द्र ने दो धनुष दिये थे—एक का नाम वज्रावर्त है और दूसरे का नाम सागरावर्त है। यदि राम

वज्रावर्त धनुष को ही चढ़ा दें तो आप प्रसन्नतापूर्वक राम को अपनी कन्या दे दें। मुझे कोई आपत्ति नहीं होगी। यदि न चढ़ा सके तो मैं आपकी कन्या को बलात् लाकर उसका अपने पुत्र के साथ विवाह कर दूंगा। जनक ने उसकी यह शर्त स्वीकार कर ली। विद्याधर योद्धा धनुष और जनक को लेकर मिथिलापुरी आये। विद्याधर धनुष की रक्षा करते हुए बाहर ठहर गये।

जनक के आने से नगर में हर्ष छा गया। तब जनक ने मंत्रियों से परामर्श किया और बताया कि चन्द्रगति ने स्वयंवर के लिये केवल बीस दिन का समय दिया है। मंत्रियों ने कहा-महाराज! राम लक्ष्मण की शक्ति का परिचय धनुष के चढ़ाने से ही हो जायगा। मंत्रियों के परामर्श से जनक ने सब राजाओं को निमन्त्रण भेज दिये। अयोध्या को भी दूत भेजा। वे स्वयंवर की तैयारी करने लगे। यथासमय सब आये। राम,लक्ष्मण भी अपने माता-पिता के साथ-साथ आये। सीता ने स्वयंवर मण्डप में माला लिये हुए प्रवेश किया। कंचुकी ने सब राजाओं का यथाक्रम परिचय दिया और राजा एवं राजकुमार बारी-बारी से धनुष के पास आने लगे। किन्तु वे देखते कि धनुष से बिजली के समान लाल-लाल आग निकल रही है। बड़े-बड़े भयानक सर्प फुंकार रहे हैं। उन्हें देखते ही भय के मारे वे आंखें बन्द कर लेते थे। कोई भय के मारे कहीं गिर पड़ा, किसी को मूर्छा आ गई। सबका बुरा हाल था। अन्त में रामचन्द्र जी उठे। उन्होंने सूर्य की ज्योति के समान उस धनुष को उठाया। उस पर प्रत्यंचा चढ़ाई और टंकार करने लगे। उसकी टंकार से पृथ्वी गूंज उठी। उस समय देवों ने पंचाश्चर्य किये। सब लोग जय-जयकार करने लगे। सीता ने आगे बढ़कर लज्जामिश्रित हर्ष के साथ रामचन्द्र जी के गले में वरमाला डाल दी और रामचन्द्र जी के पास बैठ गई। वह रामचन्द्र जी के पास बैठी हुई इन्द्र के पास बैठी इन्द्राणी जैसी सुशोभित हो रही थी।

इसके बाद लक्ष्मण उठे और उन्होंने सागरावर्त धनुष को उठाकर उसकी प्रत्यंचा चढ़ा दी और उसपर सन्धान के लिए बाण की ओर देखने लगे। तब विद्याधरों ने बड़ी विनय से कहा—इस रहने दीजिये। लक्ष्मण अत्यन्त विनय से रामचन्द्र जी के समीप आकर बैठ गये।

विद्याधर धनुष छोड़कर अपने नगर को लौट गये और जाकर राम-लक्ष्मण के पराक्रम का वर्णन करने लगे। चन्द्रगति यह सुनकर अत्यन्त चिन्तित हो गया। उधर राम और सीता का विवाह बड़ी धूमधाम के साथ हुआ। जनक ने विपुल परिमाण में दहेज दिया। उसी समय जनक के भाई कनक ने अपनी कन्या लोकसुन्दरी का विवाह भरत के साथ कर दिया। राजा दशरथ अपने पुत्रों के साथ अयोध्या वापिस लौट आये।

भामण्डल को सीता के बिना कुछ भी न सुहाता था। यहाँ तक कि उसने खाना-पीना तक बन्द कर दिया। यह बात उसके पिता को पता चली तो उन्होंने उसे समझाया-बेटा! अब सीता की तू आशा छोड़ दे। अयोध्या के राजकुमार राम के साथ सीता का तो विवाह हो गया। यह सुनकर भामण्डल को बड़ा क्रोध आया और बोला—विद्याबल से रहित भूमिगोचरियों में कितना बल है, मैं उन्हें देखता हूँ। और वह सेना लेकर अयोध्या की ओर चल दिया। चलते-चलते वह विदग्धपुर पहुँचा।

भामण्डल और सीता का मिलन

उस नगर को देखते ही उसे अपने पूर्वजन्म का स्मरण हो गया और शोक करते हुए मूर्छित हो गया कि मैंने क्या अनर्थ किया। मैंने अपनी बहन के साथ सम्बन्ध करना चाहा। तब लोग उसे उठाकर पुनः अपने नगर वापिस ले गये। मूर्छा दूर होने पर उसके पिता ने पूछा—क्या बात है, कौन तुम्हारी बहन है। तब भामण्डल ने अपने पूर्व-जन्म का सारा वृत्तान्त सुनाकर बताया कि मैं राजा जनक का पुत्र हूँ, सीता मेरी सगी बहन है।

चन्द्रगति यह सुनकर सपरिवार अयोध्या आया। एक मुनि से उपदेश सुनकर चन्द्रगति को वैराग्य हो गया और भामण्डल को राज्य देकर स्वयं मुनि बन गया। दूसरे दिन राजा दशरथ आदि मुनि वन्दना को आये। वहाँ भामण्डल का परिचय पाकर वे उससे बड़े प्रेम से मिले। सीता भी भाई से मिलकर बड़ी प्रसन्न हुई। यह समाचार राजा जनक को भेजा गया। वे सपरिवार अयोध्या आये और अपने पुत्र से मिलकर माता-पिता के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा।

संसार की दशा और विभिन्न घटनाओं के कारण दशरथ के मन में संसार से वैराग्य हो गया। वे सोचने

लगे कि राज्य-भार पुत्र को सौंपकर अब मुझे मुनि बन जाना चाहिये। एक दिन मंत्रियों को बुलाकर दशरथ ने कहा—मैं राम का राज्याभिषेक करके मुनि-दीक्षा लेना चाहता हूँ। अतः तुम लोग राज्याभिषेक की तैयारियाँ करो।' रानियों ने बहुत समझाया किन्तु दशरथ अपने निश्चय पर अडिग रहे। राज्याभिषेक की तैयारियाँ होने लगीं।

राम का वनवास

भरत का मन भी भोगों में नहीं लगता था। वह विरक्त रहता था। कभी-कभी वह मुनि-दीक्षा लेने की बात भी करता था। उसकी यह प्रवृत्ति देखकर उसकी माता कैकेयी को चिन्ता रहती कि पति तो मुनि बन ही रहे हैं, पुत्र भी यदि मुनि बन गया तो मैं कैसे जीवित रहूँगी। किस प्रकार भरत को दीक्षा लेने से रोकूँ। तभी उसे अपने वर का स्मरण हो आया। वह शीघ्र ही राजा के पास पहुँची और बोली—'महाराज! आपने रानियों के समक्ष प्रसन्न होकर मुझे वर देने को कहा था, अब आप मेरा वर मुझे दे दीजिये।' दशरथ बोले—'देवि! बोलो, क्या मांगती हो। जो मांगोगी, वही दूंगा।' रानी अपना वर पहले ही निश्चित कर चुकी थी। वह बोली—'नाथ! आप दीक्षा लेने से पहले मेरे पुत्र को अयोध्या का राज्य दे दीजिये।' दशरथ चिन्ता में पड़ गये। फिर कुछ देर सोचकर बोले—ठीक है, यही होगा। तुमने अपना वर मांगकर मुझे उऋण कर दिया।

इसके पश्चात् दशरथ ने राम को बुलाकर उनसे कहा—'बेटा! पहले एक युद्ध में तुम्हारी माता कैकेई ने बड़ी कुशलतापूर्वक मेरा रथ चलाया था। उसके कारण मुझे युद्ध में विजय मिली थी। उसके उपलक्ष्य में प्रसन्न होकर मैंने अन्य रानियों के समक्ष इन्हें इच्छित वर मांगने को कहा था। उस समय तो वह वर इन्होंने मेरे पास धरोहर रख दिया। अब ये अपना वर मांगकर अपने पुत्र भरत के लिए अयोध्या का राज्य मांग रही हैं। प्रतिज्ञा के अनुसार मुझे उनकी मांग पूरी करनी चाहिये। अन्यथा भरत दीक्षा ले लेगा और उसके वियोग में यह पुत्र-वियोग में प्राण दे देगी।

रामचन्द्र सुनकर बड़े विनय से बोले—देव! अपने वचनों का पालन करें। अन्यथा आपका लोक में अपयश होगा। आपके अपयश के साथ तो मुझे इन्द्र की सम्पदा भी नहीं चाहिये।

दशरथ ने भरत को समझाया और राज्य स्वीकार करने का आग्रह किया—'पुत्र! तुमने मेरी आज्ञा का कभी उलंघन नहीं किया। अब तुम्हें दीक्षा का विचार छोड़कर राज्य स्वीकार करना चाहिये।' किन्तु भरत बोले—पिता जी! यदि संसार में ही सुख होता तो आप ही राज्य त्याग कर क्यों दीक्षा लेने का विचार करते। दशरथ इस उत्तर से निरुत्तर हो गये।

तब राम ने बड़े स्नेह से हाथ पकड़कर कहा—भाई! तुमने जो बात कही है, वह तुम्हारे ही अनुरूप है। समुद्र में उत्पन्न होने वाला रत्न तालाब में नहीं होता। किन्तु अभी तुम्हारी वय तप करने की नहीं है। अतः पिता की निर्मल कीर्ति फैलाने के लिये तुम्हें राज्य स्वीकार कर लेना चाहिये।

इस प्रकार भरत को समझाकर राम अपनी माता के पास आज्ञा लेने पहुँचे। उनके जाते ही दशरथ वियोग विह्वल होकर मूर्च्छित हो गये। जब माता कौशल्या ने सुना तो वे भी मूर्च्छित हो गईं। जब मूर्च्छा भंग हो गई तो वे शोक करने लगीं। तब राम ने पिता द्वारा दिये हुए वचन की बात बताकर कहा कि माता के वरदान के कारण पिता ने भरत को राज्य दे दिया है। अतः मुझे यहाँ से जाना ही होगा। मेरे यहाँ रहने से भरत की आज्ञा का विस्तार नहीं होगा। इस तरह माता को सान्त्वना देकर पुनः पिता के पास आज्ञा लेने पहुँचे और आज्ञा लेकर अन्य माताओं के पास गये और उन्हें समझा बुझाकर नमस्कार कर उनसे आज्ञा मांगी।

फिर वे सीता के पास गये और बोले—'प्रिये! मैं पिता की आज्ञा से अन्यत्र जा रहा हूँ। तुम यहीं रहना। सीता बोली—'नाथ! स्त्री पति की छाया होती है। जहाँ आप जायेंगे, मैं भी वहीं रहूँगी। राम ने उसे वन के कष्टों का भयानक वर्णन करके विरक्त करना चाहा, किन्तु सीता ने कहा—पति चरणों में ही सारे सुख हैं। वन के शूल भी आपके साथ रहकर मेरे लिये फूल हो जायेंगे।

जब सबसे विदा लेकर राम और सीता लक्ष्मण के पास पहुँचे तो उसे चलने को तैयार पाया। राम को बड़ा आश्चर्य हुआ और बोले—'भाई! तुम यहाँ रहकर माता-पिता की सेवा करते रहना।' किन्तु लक्ष्मण बोले—

'तात ! यहाँ तो मेरे दो भाई हैं सेवा करने को, किन्तु आपकी और माता सीता की सेवा करने को कौन है। इसलिए आपकी सेवा करने को मैं आपके साथ चलूँगा।' राम ने निरुपाय होकर लक्ष्मण को भी साथ चलने की अनुमति दे दी। जब माताओं और पिता से आज्ञा लेकर लक्ष्मण सुमित्रा माता के पास पहुँचे और आज्ञा मांगी तो सुमित्रा ने आशीर्वाद देते हुए कहा—'पुत्र! तुम अवश्य जाओ। तुम राम को अपना पिता दशरथ मानना और सीता को अपनी सुमित्रा माता मानना, और उन दोनों की हमारी ही तरह सेवा करना।'

जब राम-सीता और लक्ष्मण चले तो परिजन-पुरजनों की आँखों से सावन-भादों की तरह आंसुओं की वर्षा हो रही थी। राम के मना करने पर भी पुरवासी उनके पीछे-पीछे चले। जब सरयू का तट आ गया तो राम ने सबको समझाया —'पिता ने भरत को राज्य दिया है। आप लोग उनकी आज्ञा मानकर सुखपूर्वक रहें और अब आप लोग वापिस लौट जाँय।

सबको विदाकर वे तीनों चल दिये। आगे राम थे, बीच में सीता और उनके पीछे लक्ष्मण। उन्होंने सरयू नदी पार कर गहन वन में प्रवेश किया।

इधर भरत का राज्याभिषेक करके दशरथ ने मुनि-दीक्षा लेली। उनके वियोग में कौशल्या और सुमित्रा शोकसंतप्त रहने लगीं। उनके शोक को देखकर भरत का राज्य विष जैसा प्रतीत होता था। कैकेयी ने जब दोनों को निरन्तर विलाप करते हुओ देखा तो एक दिन वह भरत से बोला—'बेटा ! मुझे राज्य तो मिल गया, किन्तु राम और लक्ष्मण के बिना यह राज्य सूना लगता है। वे और जनकनन्दिनी राजभवन में पले हैं। वे पांव प्यादे पथरीली जमीन पर कैसे चलते होंगे। अतः तू शीघ्र जाकर उन्हें लौटा ला। मैं भी तेरे पीछे-पीछे आ रही हूँ।

यह सुनकर शीघ्रगामी घोड़े पर सवार होकर साथ में एक हजार घोड़े लेकर भरत वहाँ से रवाना हुआ। वह नदी नालों को पार करता हुआ लोगों से पूछता हुआ एक भयानक वन में पहुँचा। वहाँ एक सरोवर के किनारे राम लक्ष्मण और सीता को बैठे हुए देखा। वह दूर से ही घोड़े से उतर पड़ा और पैदल जाकर राम के चरणों में जाकर मूर्च्छित हो गिर पड़ा। राम ने उसे सचेत किया और परस्पर कुशल क्षेम पूछी। तब भरत हाथ जोड़कर मस्तक नवाकर बोला—'नाथ! आप विद्वान् हैं। राज्य के कारण मेरी यह विडम्बना हो रही है। आपके बिना वह राज्य तो दूर रहा, मुझे अपना जीवन भी अभीष्ट नहीं है। आप अयोध्या चलें और राज्य संभालें। मैं आपके सिर पर छत्र लगाये खड़ा रहूँगा, शत्रुघ्न चमर ढोरेगा और लक्ष्मण आप का मंत्रीपद संभालेगा। मेरी मां पश्चाताप की अग्नि से जल रही है और आपकी और लक्ष्मण की मातायें भी शोक से विह्वल हैं।'

भरत इस प्रकार कह ही रहा था कि इतने में कैकेयी रथ पर सवार होकर सौ सामन्तों के साथ वहाँ आ पहुँची। पुत्रों को देख कर शोक से वह हाहाकार करने लगी। दोनों को उसने कंठ से लगाया और बोली-बेटा ! उठो, अपनी राजधानी चलें और वहाँ चलकर राज्य करना। तुम्हारे बिना सब सुनसान मालूम देता है। स्त्री होने के कारण मुझ नष्टबुद्धि से जो अनुचित कार्य बन पड़ा है, उसके लिए तुम मुझे क्षमा करो।' यह सुन कर रामचन्द्रजी बोले-मां ! क्या तुम नहीं जानतीं, क्षत्रियों के बचन अन्यथा नहीं होते। पिताजी ने जो कहा है, उसका मुझे और तुम्हें भी पालन करना चाहिए, जिससे भरत की संसार में अपकीर्ति न हो।' फिर भरत को भी समझाया और सबके सामने उन्होंने भरत का राजतिलक किया और कैकेयी को प्रणाम करके तथा भरत को पुनः छाती से लगाकर दोनों को कठिनता से विदा किया।

भरत जाकर न्यायपूर्वक राज्य-शासन करने लगा। उसका मन राज्य में नहीं लगता था। उसने प्रतिज्ञा की कि राम के जब दर्शन होंगे, तभी मैं मुनि-व्रत धारण कर लूंगा। और वह घर में ही योगी की तरह रहने लगा।

भ्रमण करते-करते रामचन्द्र चित्रकूट पर्वत पर पहुँचे। वहाँ कुछ दिन रहे। सुन्दर मिष्ट फल, झरनों का शीतल जल, सुरागाय का दूध और जंगली चावल, कोई कष्ट नहीं था। फिर वहाँ से मालव देश में दशपुर के निकट आये। वहाँ देखा कि ईख के खेत खड़े हैं, धान्य के ढेर लगे हैं। गगन-चुम्बी जिनालय बने हैं, किन्तु मनुष्य एक भी नहीं दीख पड़ता। एक दरिद्र मनुष्य आता हुआ दिखाई दिया। उससे पूछा—यहाँ के सब मनुष्य कहाँ चले गये ? वह बोला—दशपुर नगर में वज्रकर्ण

वज्रकर्ण का कष्ट निवारण

नामक एक पापी राजा रहता था। उसे एक दिन एक मुनिराज मिले। उनके उपदेश को सुनकर राजा ने उनसे श्रावक के व्रत ग्रहण किये और प्रतिज्ञा की कि मैं देव, गुरु और शास्त्र के सिवाय किसी को नमस्कार नहीं करूँगा।

प्रतिज्ञा करके वह अपने नगर को लौट गया। उसने अपनी अंगूठी में जिन-प्रतिबिम्ब जड़वा रखा है। उसकी वह प्रतिदिन पूजा करता है। एक दिन वह उज्जयिनी गया। वहाँ के राजा सिंहोदर को नमस्कार करने के बहाने मुद्रिका स्थित जिन-बिम्ब को ही नमस्कार किया। यह बात किसी दुष्ट पुरुष ने भांपली और बाद में सिंहोदर से शिकायत कर दी। सिंहोदर को बड़ा क्रोध आया और उसने दशपुर से वज्रकर्ण को बुलवाया। जब वह उज्जयिनी जाने को तैयार हुआ तो एक व्यक्ति ने उसे सिंहोदर का दुरभिप्राय समझाया, जो उसने सिंहोदर के महलों में चोरी के लिये जाने पर सिंहोदर के मुख से ही सुना था। वज्रकर्ण उसकी बात पर विश्वास करके किले में लौट गया। कुछ समय पश्चात् सिंहोदर अपनी सेना लेकर उसे मारने आया। किन्तु किले को दुर्भेद्य और अजेय जानकर उसने वज्रकर्ण के पास दूत भेजा। दूत ने जाकर कहा—'महाराज! सिंहोदर ने कहा है कि मेरे दिये हुए राज्य का तू उपभोग करता है और मुझे नमस्कार न करके अपने भगवान को नमस्कार करता है। अतः तू आकर मुझे प्रणाम कर अन्यथा तुझे मार डाला जाएगा।' वज्रकर्ण ने दूत से स्पष्ट कह दिया—'मैं धर्म नहीं छोड़ सकता हूँ, राज्य छोड़ सकता हूँ। यदि चाहें तो सिंहोदर अपना राज्य वापिस ले लें। दूत ने यह बात सिंहोदर से जाकर कह दी। इससे वह और भी जल भुन गया और क्रोध में आकर उसने सारा नगर उजाड़ दिया, घरों में आग लगवादी, मनुष्यों को मार दिया। इस नगर के सुनसान होने का यह कारण है। रामचन्द्रजी ने उस दरिद्र को अपना रत्नहार दे दिया, जिसे लेकर वह प्रसन्नतापूर्वक वहाँ से चला गया।

रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा—लक्ष्मण! वज्रकर्ण धर्मात्मा है। उसकी रक्षा करनी चाहिये। रामचन्द्र जी की आज्ञा पाकर लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर सिंहोदर के दरबार में पहुँचे। सिंहोदर ने पूछा—'तू कौन है?' लक्ष्मण बोले—'मैं भरत का दूत हूँ। तुझे समझाने आया हूँ। तूने धर्मात्मा वज्रकर्ण को क्यों कष्ट दे रक्खा है।' सिंहोदर क्रोध में बोला—कौन भरत, कहाँ का भरत! वज्रकर्ण मेरा शत्रु है। वह मुझे नमस्कार नहीं करता, अपने भगवान को नमस्कार करता है। इसे मैं बिना मारे छोड़ूँगा नहीं। अगर भरत या तूने बीच में टांग अड़ाई तो तुम्हें भी मारूँगा।' लक्ष्मण को यह सुनकर क्रोध आ गया। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने आनन-फानन में सिंहोदर को जीत लिया और मुश्कें बांधकर रामचन्द्र जी के पास ले आये। सिंहोदर रामचन्द्र जी के पैरों में गिर पड़ा। उसकी रानियाँ भी पति के प्राणों की भिक्षा मांगने लगीं। तब रामचन्द्र जी ने कहा—'तुम वज्रकर्ण की आज्ञा में रहो।' सिंहोदर ने यह बात स्वीकार कर ली। तब रामचन्द्र जी ने वज्रकर्ण को बुलाने एक आदमी भेजा। वज्रकर्ण भगवान के मन्दिर में जाकर और उनको नमस्कार करके रामचन्द्र जी के पास आया। दोनों में कुशल-क्षेम हुई। फिर रामचन्द्र जी और लक्ष्मणजी ने वज्रकर्ण की खूब प्रशंसा की और उससे कुछ इच्छा प्रगट करने के लिये कहा। वज्रकर्ण ने कहा—आप सिंहोदर को मुक्त कर दीजिये। लक्ष्मण ने तुरन्त उसे मुक्त कर दिया। तब वज्रकर्ण और सिंहोदर दोनों गले से मिले और सिंहोदर ने उज्जयिनी का आधा राज्य वज्रकर्ण को दे दिया और दोनों सुखपूर्वक रहने लगे।

लक्ष्मण को वनमाला का लाभ

इसके कुछ दिन पश्चात् राम वहाँ से नलकच्छपुर में पहुँचे। वहाँ की राजकुमारी कल्याणमाला जो सदा पुरुषवेष में रहती थी, वह जंगल में लक्ष्मण को देखकर मोहित हो गई। वह राम के निकट आई। उसने बताया कि उसके पिता बालखिल्य को म्लेच्छ राजा ने बन्दी बना लिया है। लक्ष्मण भी उसे देखकर कामासक्त हो गये। उन्होंने उसके पिता को म्लेच्छों से छुड़ाने का वचन दिया। कुछ दिन बाद वे लोग चलकर विन्ध्याटवी पहुँचे और म्लेच्छों से युद्ध कर लक्ष्मण ने म्लेच्छराज रौद्रभूति के कारागार से बालखिल्य को मुक्त किया और रौद्रभूति को उसका मंत्री बनाया।

फिर वे क्षेमदेश में पहुँचे। वहाँ जंगल में वे लोग ठहरे हुए थे। उन्हें देखकर यक्षाधिपति ने उनके लिए सभी सुविधाओं से युक्त रामपुर नामक नगर बनाया। वे वहाँ रहने लगे। एक दिन दरिद्र कपिल ब्राह्मण वहाँ आया। उसने एक बार सीता का अपमान किया था, जब वे लोग उसकी यज्ञशाला में ठहरे थे। किन्तु रामचन्द्र जी ने उसे विपुल द्रव्य देकर विदा किया।

चातुर्मास के पश्चात् जब वे लोग रामपुर से चलने लगे तो यक्ष ने क्षमा-याचना करते हुए राम को स्वयंप्रभ नामक एक सुन्दर हार दिया। लक्ष्मण को कानों के देदीप्यमान कुण्डल दिये और सीता को सुकल्याण नाम का एक चूड़ामणि रत्न दिया और एक सुन्दर वीणा दी। वहाँ से विदा होकर वे भयानक वनों में से होते हुए विजयपुर नगर के बाहर उद्यान में ठहरे।

उस नगर के राजा पृथ्वीधर की सुन्दरी कन्या वनमाला बचपन में लक्ष्मण की प्रशंसा सुनकर उनके प्रति अनुरक्त हो गई थी और उन्हें मन में पति मान लिया था। जब राजा पृथ्वीधर ने सुना कि राजा दशरथ के दीक्षा लेने पर राम-लक्ष्मण और सीता कहीं वन में चले गये हैं तो उसने वनमाला का विवाह इन्द्रनगर के राजकुमार बालमित्र के साथ कर देना चाहा। जब वनमाला को यह ज्ञात हुआ तो उसने किसी परपुरुष के साथ विवाह न करने और पेड़ से लटककर गले में फांसी लगाकर मर जाने का निश्चय कर लिया। सूर्यास्त होने पर वह माता पिता से आज्ञा लेकर सखियों के साथ रथ में बैठकर वनदेवी की पूजा करने के लिए वन में चल दी। दैवयोग से जिस वन में जिस रात को राम-लक्ष्मण ने विश्राम किया था, उसी रात को उसी वन में वह पहुँची। उसने वनदेवी की पूजा की और सखियों से आंख बचाकर चुपचाप वहाँ से चल दी। आहट पाते ही लक्ष्मण उठ बैठे और किसी अनिष्ट की आशंका से वे उसका अनुसरण करने लगे कि देखें, यह क्या करती है। वे एक वृक्ष की ओट में खड़े हो गये। वनमाला चलती-चलती उसी वृक्ष के पास पहुँची और एक कपड़ा वृक्ष से बाँध कर बोली—इस वृक्ष पर रहने वाले हे देवताओ! यदि कभी इस वन में घूमते हुए कुमार लक्ष्मण आवें तो तुम उनसे कह देना कि वनमाला तुम्हारे विरह में मरगई। इस जन्म में तो तुम नहीं मिल पाये किन्तु अगले जन्म में तुम्हीं मेरे पति होना।' यों कहकर वह अपने गले में फन्दा बाँधने को तैयार हुई त्योंही लक्ष्मण ने उसे रोककर कहा—'सुन्दरि! जिस गले में मेरी बाहें पड़नी चाहिये, उसमें तुम फांसी क्यों डाल रही हो। मैं हूं वह लक्ष्मण हूँ।' यह कहकर लक्ष्मण ने उसके हाथ से फांसी छीन ली और उसे आलिंगन में भर लिया।

प्रभात होने पर जब रामचन्द्र जी उठे और लक्ष्मण को वहाँ नहीं देखा तो वे अधीर हो उठे और लक्ष्मण को आवाज देने लगे। लक्ष्मण फौरन वनमाला के साथ वहाँ आया। उन्हें नमस्कार किया और रात की सारी घटना कह सुनाई।

उधर जब सखियों ने वनमाला को न देखा तो वहाँ कोहराम मच गया। राजा के पास समाचार पहुँचा। राजा और रानी वहाँ आये जहाँ श्रीराम बैठे हुए थे। उन्हें नमस्कार कर वह बैठ गया। राजा ने उनसे राजमहलों में पधारने की प्रार्थना की। सब लोग हाथी पर आरूढ़ होकर राजप्रासाद पहुँचे। वहाँ धूमधाम के साथ वनमाला का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया।

एक दिन राजा पृथ्वीधर राम-लक्ष्मण के साथ राजदरबार में बैठा हुआ था, तभी एक दूत वहाँ आया और राजा से निवेदन किया—'महाराज! नन्द्यावर्त के राजा अतिवीर्य ने सेना सहित आपको बुलाया है।' राजा ने उससे बुलाने का कारण पूछा तो दूत बोला—'महाराज अतिवीर्य ने अयोध्या के राजा भरत को सन्देश भेजा था कि या तो तुम मेरी आधीनता स्वीकार करो अन्यथा युद्ध के लिये तैयार रहो। शत्रुघ्न ने दूत को अपमानित करके निकाल दिया। जब राजा अतिवीर्य ने यह सुना तो वे अंग, बंग, तिलंग देश के म्लेच्छ राजाओं को लेकर अयोध्या पर आक्रमण करने चल दिये। राजा भरत भी अवन्ती और मिथिला के राजाओं के साथ चलकर नर्मदा के तट पर आ डटा। रात में शत्रुघ्न ने हमारे चौंसठ हजार घोड़े चुपचाप खोल दिये। इस पर अतिवीर्य महाराज ने विभिन्न देशों के राजाओं को बुलाने के लिये दूत भेजे हैं। अतः आप भी वहाँ शीघ्र पहुंचें।

रामचन्द्र जी को यह सुनकर बड़ी चिन्ता हुई। वे लक्ष्मण से बोले—'वत्स! अतिवीर्य बड़ा बलवान और असख्य सेना का अधिपति है। भरत के पास सेना कम है। अतः भरत हार जायगा। हमें भरत की सहायता करनी है किन्तु छद्मवेश में रहकर जिससे किसी को हमारा पता न चले।' उन्होंने राजा पृथ्वीधर से भी अपना अभिप्राय प्रगट किया। पृथ्वीधर, राम-लक्ष्मण और सीता सहित अपनी सेना लेकर चल दिया और जाकर अतिवीर्य से मिले। सीता को तो राम ने एक जिन मन्दिर में श्वेत वस्त्र पहनाकर आर्यिका के निकट ठहरा दिया और भगवान के दर्शन कर अतिवीर्य के पास पहुँचे। वहाँ कौशल से लक्ष्मण ने अतिवीर्य को बन्दी बना लिया। सब राजा भयभीत हो गये।

लक्ष्मण अतिवीर्य को लेकर रामचन्द्र जी के पास आये। रामचन्द्र जी बोले—भरत सारे भारत के राजा हैं। तुम उनकी आधीनता स्वीकार करो और आनन्दपूर्वक रहो।' यों कह कर उसके बन्धन खुलवा दिये। अतिवीर्य बोला—"मुझे अब भोगों की इच्छा नहीं है। मैं तो अब जिन दीक्षा लेकर आत्म कल्याण करूँगा।' यों कहकर वह मुनि बन गया। रामचन्द्र जी ने इसके पुत्र विजयरथ का राज तिलक कर दिया। विजयरथ ने अपनी बहन का विवाह लक्ष्मण के साथ कर दिया और भरत के साथ सन्धि कर ली। रामचन्द्रजी पृथ्वीधर के साथ विजयपुर लौट आये।

कुछ दिन वहाँ ठहरकर जब वे लोग वहाँ से चलने लगे तो लक्ष्मण वनमाला से विदा लेने पहुँचे और बोले—'प्रिये! तुम यहीं रहना। कुछ दिन बाद मैं तुम्हें लिवा ले जाऊँगा।' किन्तु वनमाला बोली—'नाथ! मैं भी आपके साथ चलूँगी।' तब लक्ष्मण बोले—'हे शुभे! यदि मैं तुम्हें लेने न आऊँ तो मुझे वह दोष लगे, जो रात्रि भोजन करने से या कन्द मूल खाने से अथवा अनछना जल पीने से लगता है।' तब वनमाला आश्वस्त हो गई और वे तीनों वहाँ से चुपचाप चल दिये।

वहाँ से चलकर वे क्षेमांजलि नगर के बाहर उद्यान में ठहरे। राम की आज्ञा से लक्ष्मण शहर देखने गये और वहाँ के राजा की पुत्री जितपद्मा की प्रतिज्ञानुसार लक्ष्मण ने राजदरबार में जाकर देवाधिष्ठित पांच शक्तियों को झेला तथा रामचन्द्रजी की आज्ञा से जितपद्मा के साथ विवाह किया।

वे वहाँ कुछ दिन ठहर कर एक दिन चुपचाप दक्षिण समुद्र की ओर चल दिये। चलते-चलते वे वंशस्थल नगर पहुँचे। वहाँ के लोगों को भयभीत देखकर रामचन्द्रजी ने इसका कारण पूछा तो एक व्यक्ति ने बताया कि 'रात में इस पर्वत के ऊपर कुछ दिनों से बिजली गिरने जैसा भयानक शब्द होता है और भूतप्रेतादिकों की डरावनी आकृतियाँ दिखाई देती हैं। रात को सब लोग बाहर भाग जाते हैं और सुबह फिर नगर में आ जाते हैं।' यह सुनकर रात को रामचन्द्र जी लक्ष्मण और सीता के साथ पर्वत पर पहुँचे। वहाँ जाकर क्या देखते हैं कि देशभूषण और कुलभूषण नामक दो मुनि तपस्या कर रहे हैं और उनके सारे शरीर पर साँप-बिच्छू आदि लगे हैं। सबने उन्हें नमस्कार किया और अपने धनुषों से साँप-बिच्छुओं को हटाया। मुनियों के चरण धोये और उनकी पूजा की।

राम का जटायु से मिलन

कुछ देर बाद एक असुर ने उन मुनियों को नाना भांति के कष्ट देने आरम्भ किये। वह नाना प्रकार के डरावने रूप बनाकर भयानक आवाज करने लगा। सीता इससे डर गई। तब रामचन्द्र जी ने सीता को तो मुनि चरणों में बैठा दिया और दोनों भाई धनुष चढ़ा कर टंकारने लगे। असुर भयभीत होकर वहाँ से भाग गया। उपसर्ग दूर हो गया। उसी समय दोनों मुनियों को केवलज्ञान हो गया। चतुर्निकाय के देव भगवान का केवलज्ञान महोत्सव मनाने आये। भगवान का उपदेश हुआ। सबने उपदेश सुनकर आत्म कल्याण किया।

तभी गरुणेन्द्र वहाँ आया और प्रसन्न होकर रामचन्द्रजी से बोला—'तुमने दोनों मुनियों की जो सेवा की है, इससे मैं बहुत प्रसन्न हूँ। तुम जो चाहो सो मांग लो।' रामचन्द्रजी बोले—'जब आवश्यकता होगी, हम आप को स्मरण करेंगे। आप उस समय हमारी सहायता करना।' गरुणेन्द्र ने 'तथास्तु' कहा।

वंशपुर के राजा ने राम सीता और लक्ष्मण का बड़ा सम्मान किया। रामचन्द्रजी ने वहाँ कुछ दिन ठहर कर विशाल जिन मन्दिर बनवाये और उनकी प्रतिष्ठा करा दी तब से उस पर्वत का नाम रामगिरि हो गया।

वहाँ से वे चल दिये और वन के बीच बहने वाली कर्णरवा नदी के तट पर पहुँचे। सीता ने वहाँ भोजन बनाया। लक्ष्मण वन में बनहस्ती के साथ क्रीड़ा करते हुए कुछ दूर निकल गये। तभी सीता ने सुगुप्ति और गुप्ति नामक दो मुनियों को आते देखा। उसने रामचन्द्रजी को बताया। फौरन रामचन्द्रजी और सीता ने दोनों मुनियों को पड़गाया और विधिपूर्वक उनको आहार कराया। आहार होने पर देवों ने पंचाश्चर्य किये। मुनि आहार के पश्चात् वहीं शिला पर बैठ गये। मुनियों को देखकर उस समय एक गृद्ध पक्षी को जाति-स्मरण ज्ञान (पूर्व जन्म का ज्ञान) हो गया। वह भक्ति से प्रेरित होकर मुनियों के चरणों में गिर पड़ा और चरणोदक में लोट-लोट कर स्तुति करने लगा। चरणोदक के प्रभाव से उसका शरीर स्वर्ण जैसा हो गया, बाल रेशम जैसे हो गये। पंख वैडूर्य मणि के समान हो गये और पंजे पद्मराग मणि जैसे हो गये।

यह देखकर राम और सीता को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने मुनि महाराज से इसका कारण पूछा तो अवधिज्ञानी मुनि बोले—पहले इस वन के स्थान पर एक सुन्दर नगर था। उसका नाम था कार्यकुण्डल। वहाँ का राजा दण्डक था, उसकी रानी मस्करी थी। दोनों विषयलम्पटी और सद्धर्म के विरुद्ध थे। एक दिन राजा ने वन में एक मुनि को ध्यान करते हुए देखा। उसने उनके गले में एक मरा हुआ सर्प डाल दिया। कुछ दिनों के बाद एक मनुष्य उधर से निकला। उसने मुनि के गले से वह सर्प हटा दिया। सर्प के विष के कारण मुनि का शरीर काला और चिपचिपा हो गया था। तभी वहाँ वह राजा आ निकला। उसने देखा कि मैंने मुनि के गले में जो सर्प डाला था, उसको मुनि ने स्वयं नहीं हटाया है। यह देखकर वह मुनिभक्त बन गया और उसने जैन धर्म अंगीकार कर लिया। इससे रानी को बड़ा बुरा लगा। वह राजा को जैन धर्म से हटाने का उपाय सोचने लगी। एक दिन एक मुनि आहार के निमित्त राजद्वार पर आये। रानी ने उनके ऊपर झूठा अपवाद लगाकर राजा से शिकायत कर दी। राजा को बड़ा क्रोध आया। उसने सारे दिगम्बर मुनियों को घानी में पेरने की आज्ञा दे दी। राजाज्ञा से सारे दिगम्बर मुनि जो वहाँ थे, घानी में पेर दिये गये। एक मुनि बाहर गये हुए थे। जब वे नगर की ओर आ रहे थे तो मार्ग में एक व्यक्ति ने उनसे मुनियों के घानी में पेरने का समाचार सुनाया। सुनकर उन मुनि को बड़ा दुःख हुआ और अत्यन्त क्रोध भी आया। भयंकर क्रोध के कारण उनकी बाईं भुजा से कालाग्नि के समान एक अशुभ तेजस पुतला निकला। उसने सारे नगर को भस्म कर दिया। उससे कोई मनुष्य-पशु-पक्षी तक नहीं बचा। राजा भी उसी में भस्म हो गया। राजा नरक में गया, मुनि भी चिरकाल से उपार्जित धर्म को नष्ट करने के कारण नरक में गये। राजा अनेक योनियों में भ्रमण करते-करते अन्त में यह गृद्ध पक्षी बना है। इसे हमें देख कर अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया है और वह अपने किये हुए पापों का प्रायश्चित कर रहा है। धीरे-धीरे नगर के भस्म के स्थान पर यह वन लग गया। उस दण्डक राजा के नाम पर ही इस वन का नाम दण्डक-वन या दण्डकारण्य पड़ गया है।

इसके पश्चात् मुनिराज ने उस गृद्ध पक्षी को उपदेश दिया। फलतः उस पक्षी ने श्रावक के व्रत ग्रहण किये, जीव हिंसा का त्याग कर दिया। तब मुनियों ने उस पक्षी को सीता के हाथ में पालन-पोषण के लिये सौंप दिया और वे विहार कर गये।

तभी हाथी पर सवार होकर लक्ष्मण आये। उन्होंने पक्षी को देख कर उसके बारे में पूछा। राम ने मुनि के आहार-दान और पक्षी के बारे में सारी बातें बताईं। सबने बैठकर फिर भोजन किया और तीनों ने मिलकर उस पक्षी का नाम 'जटायु' रखा। वे लोग उस वन की शोभा देखकर वहीं कुटिया बनाकर रहने लगे।

सीता का अपहरण

अब रामचन्द्र जी विचार करने लगे कि यहाँ एक सुन्दर नगर बसा कर यहीं पर निवास किया जाय तथा माताओं को भी यहीं बुला लिया जाए। एक दिन वे लक्ष्मण से बोले—'वत्स ! देखो तो यहाँ नगर बसाने के लिये कौन-सा स्थान उपयुक्त रहेगा। लक्ष्मण धनुष-बाण लेकर स्थान की खोज में चल दिये। कुछ दूर जाने पर उन्हें सुगन्ध आई। आगे बढ़े तो बांसों के झुरमुट में एक लटकती हुई तलवार दिखाई दी। उन्होंने बड़े उत्साह से वह तलवार हाथ में ले ली और उसकी तीक्ष्णता की परीक्षा करने के लिये उन्होंने वह तलवार उसी बांसों के झुरमुट पर फिराकर मारी। बांसों के झुरमुट के साथ वहाँ किसी का सिर भी कट गया। उसे देखकर लक्ष्मण को बड़ा दुःख हुआ। वे तलवार हाथ में लेकर रामचंद्र जी के पास गये और बड़े दुःख भरे शब्दों में उनसे सारा वृत्तान्त निवेदन कर दिया। राम विचार कर बोले—यह किसी विद्याधर का सिर तूने काट दिया है। अतः यहाँ कुछ अनर्थ होने की संभावना है। अब सावधान रहना चाहिये।

अलंकारपुर के राजा खरदूषण और (रावण की बहन) चन्द्रनखा के दो पुत्र थे—संबूक और सुन्दर। एक दिन संबूक ने पिता के मना करने पर भी सूर्यहास तलवार सिद्ध करने के लिये दण्डक-वन में प्रवेश किया और बांसों के झुरमुट में बैठ कर ब्रह्मचर्य व्रत लेकर दिन में केवल एक बार भोजन और एक वस्त्र पहनकर धूप-दीप आदि से अर्चना करता हुआ सूर्यहास तलवार की सिद्धि के लिये बैठ गया। उसकी माता चन्द्रनखा प्रति दिन दोपहर को पुत्र

को भात दे जाती और उसे देख जाती। बारह वर्ष बाद एक दिन उसने खड्ग को देखा। वह बड़ी प्रसन्न हुई। उसने अपने पति से जाकर यह बात बताई कि आज से तीसरे दिन हमारा पुत्र खड्ग सिद्ध करके यहाँ आ जायगा। अतः उसके स्वागत की तैयारी करनी चाहिये।

जब अगले दिन चन्द्रनखा अपने पुत्र को देखने आई तो पुत्र का मस्तक कटा हुआ देखकर दुःख से रोने लगी। वह बार-बार मूर्च्छित हो जाती और होश में आने पर विलाप करने लगती। वह सोचने लगी कि जिसने मेरे पुत्र का वध करके खड्ग को चुराया है, उस पापी को अपने पति और भाई द्वारा मरवा डालूँगी! यों सोचकर वह अपने पुत्र के हत्यारे को खोजने लगी। उसे कुछ दूर आगे जाने पर कामदेव जैसे दो देवकुमार दिखाई दिये। उन्हें देखते ही वह पुत्र-शोक भूल गई और काम से पीड़ित हो गई। वह विद्या से वनलक्ष्मी के समान सुन्दर कन्या का रूप बनाकर एक वृक्ष के नीचे बैठ कर रोने लगी। उसका करुण रुदन सुनकर सीता उसके पास आई और उसे सान्त्वना देती हुई रामचन्द्रजी के पास ले आई। राम ने उससे रुदन का कारण पूछा तो वह बोली—'नाथ! बचपन में ही मेरे माता-पिता मर गये। मैं अनाथ होकर इस जंगल में मारी-मारी फिर रही हूँ। यदि आप दोनों में से मुझे कोई अपना ले तो मैं उन्हीं की शरण में पड़ी रहूँगी, अन्यथा मेरा मरण निश्चित है।' उसकी बात सुनकर समयज्ञ रामचन्द्रजी बोले—बाले! हम दोनों में से तो तुम्हें कोई नहीं चाहता। अन्यत्र तुम चली जाओ। यों कहकर उसे वहाँ से निकाल दिया। वह क्रुद्ध होकर अपने नगर में लौट आई और बाल बखेर कर शरीर में खरोंचकर बुरी तरह रोने लगी। उसका रुदन सुनकर खरदूषण आया और उससे रोने का कारण पूछने लगा। उसने रो रो कर बताया—'नाथ! हमारा पुत्र संबूक सूर्यहास तलवार को दण्डक-वन में साधन कर रहा था। कहीं से स्त्री सहित दो पुरुषों ने आकर हमारे पुत्र का वध कर दिया और तलवार छीन ली। मैं पुत्र को देखने गई तो वे दुष्ट मेरे साथ कुचेष्टा करने लगे। यही अच्छा हुआ कि मेरा शील खण्डित नहीं हुआ। मैं बड़ी कठिनाई से उनसे बच कर यहाँ आ सकी हूँ। आप उन पुत्रघातियों से अवश्य बदला लें।'

पुत्र-मरण का समाचार सुनकर खरदूषण मूर्च्छित हो गया और विलाप करने लगा। फिर उसे क्रोध आया—'मैं अभी जाकर उन दुष्टों का सिर काट कर लाता हूँ।' जब वह चलने लगा तो मंत्रियों ने समझाया—'जिन्होंने सूर्यहास खड्ग छीन लिया और संबूक कुमार का वध किया है, वे अवश्य ही कोई वीर पुरुष होंगे। अतः महाराज रावण को समाचार भेजना ठीक होगा। मंत्रियों की बात सुनकर उसने एक दूत रावण के पास भेजा। दूत ने जाकर रावण को सब समाचार बताये। सुनकर रावण को बड़ा क्रोध आया और युद्ध की तैयारी करने लगा।

इधर खरदूषण पुत्र-शोक और क्रोध से अधीर हो रहा था। वह अपनी सेना लेकर दण्डक वन पहुँचा। जब सेना रामचन्द्र जी के निकट आगई, तब लक्ष्मण बोले—'देव! यह तो उस मरे हुए मनुष्य के पक्ष के लोग मालूम पड़ते हैं। उस कुलटा स्त्री ने ही ये भेजे मालूम पड़ते हैं।' रामचन्द्र जी बोले—'लक्ष्मण! तू सीता की रक्षा कर, मैं इन्हें मारता हूँ।' किन्तु लक्ष्मण ने आग्रह किया—'देव! मेरे रहते आपको युद्ध करना उचित नहीं है। आप राजपुत्री की रक्षा करें। मैं युद्ध के लिये जाता हूँ। यदि मुझ पर कोई विपत्ति आई तो मैं सिंहनाद कर आपको सूचना दूँगा।

यह कहकर सागरावर्त धनुष और सूर्यहास तलवार लेकर लक्ष्मण युद्ध के लिए शत्रु के सम्मुख आ डटे। दोनों ओर से युद्ध होने लगा। अकेले लक्ष्मण ने बाणों की वर्षा कर शत्रु-पक्ष को व्याकुल कर दिया। इसी बीच रावण भी सेना सहित दण्डक वन में आगया। वह 'संबूक को मारने वाला वह नराधम कहाँ है' इस प्रकार कहता हुआ सम्मुख आया और रूपलावण्यवती सीता को देख कर काम से पीड़ित हो गया। वह सोचने लगा—'मैं इस रूप सुन्दरी को कैसे प्राप्त करूँ। बलपूर्वक इसका अपहरण करूँ तो व्यर्थ युद्ध होगा और अपयश भी होगा। अतः इसके हरने का कोई ऐसा उपाय करूँ कि कोई जान न पाये।

इस प्रकार सोचकर उसने कर्ण पिशाचिनी विद्या को बुलाकर उस स्त्री का परिचय पूछा और उपाय भी पूछा। उसने सीता का परिचय देकर कहा कि लक्ष्मण जब सिंहनाद का शब्द करेगा तो राम भी युद्ध के लिए जायेगा।' विद्या के बचन सुनकर उस परस्त्री लम्पट ने सिंहनी विद्या को बुलाया और उसे सिखा-पढ़ा कर युद्ध में भेजा। उसने जाकर दोनों ओर की सेना में घोर अंधकार कर दिया और लक्ष्मण की आवाज में 'राम-राम' इस

प्रकार सिंहनाद किया। रामचन्द्र जी इस सिंहनाद को लक्ष्मण का समझ कर सीता को समझा-बुझा कर और जटायु से उसकी रक्षा करने को कहकर युद्ध के लिये चल दिये। रावण तो इस अवसर की ताक में ही था। उसने आकर सीता को उठाकर पुष्पक विमान में बैठा लिया। यह देखकर जटायु बड़ी जोर से रावण पर झपटा। उसने अपनी चोंच और नखों से रावण को क्षत-विक्षत कर दिया। रावण ने विघ्न आया देख कर जटायु पर प्रहार किया। बेचारा पक्षी उस प्रहार से मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण पुष्पक विमान को लेकर अपने स्थान को चला गया।

सीता अपना अपहरण जानकर जोर-जोर से राम-राम चिल्लाती हुई विलाप करने लगी। रावण मन में विचार करता जा रहा था—'अभी यह अपने पति के लिये विलाप कर रही है। जब मेरे ठाठ-बाट देखेगी तो यह अपने पति को भूल जायगी और मुझसे प्रेम करने लगेगी। किन्तु मैंने तो गुरु से व्रत लिया है कि किसी स्त्री के साथ उसकी इच्छा के बिना मैं बलात्कार नहीं करूँगा। अतः इसे एकान्त उद्यान में रखकर युक्ति से वश में करना ठीक होगा।' इस प्रकार सोचता हुआ वह लंका जा पहुँचा।

उधर रण-भूमि में राम को आया देखकर लक्ष्मण बोला 'देव! आप भयानक वन में सीता को अकेली छोड़ कर क्यों चले आये?' राम बोले—'तुम्हारा सिंहनाद सुनकर ही मैं यहाँ चला आया।' लक्ष्मण बड़े आश्चर्य में भरकर बोले—'मैंने तो कोई सिंहनाद नहीं किया था। आप शीघ्र चले जाइये।' राम लक्ष्मण को आशीर्वाद देकर शीघ्र वहाँ से अपने स्थान पर वापिस आये। वहाँ सीता को न पाकर 'सीता, सीता' पुकारने लगे और मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब सचेत हुए तो वे फिर विलाप करने लगे —'देवि! तुम क्यों हँसी कर रही हो। तुम जरूर वृक्षों के पीछे कहीं छिपी हुई हो, जल्द निकल आओ। क्या तुम मुझे अपने वियोग से मरा हुआ देखना चाहती हो।' इस तरह विलाप करते हुए वे इधर-उधर घूमकर सीता को देखने लगे। तब उन्हें मरणासन्न जटायु धीरे-धीरे कराहता हुआ दिखाई दिया। रामचन्द्र एक क्षण को सीता का वियोग भूल गये और जटायु के कान में धीरे-धीरे णमोकार मन्त्र सुनाने लगे। मरते समय जटायु के भाव शुभ हो गये और वह मर कर देवयोनि में उत्पन्न हुआ। जटायु के मर जाने से उनका शोक और प्रबल हो गया। वे फिर मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। चेत आने पर वे फिर विलाप करने लगे—हे वन्य पशुओ! यदि तुमने कहीं मेरी सीता को देखा हो तो तुम मुझे बता दो। हे वृक्षो! यदि तुम्हें सीता का कुछ पता हो तो तुम्हीं बता दो।' जब कहीं से कोई उत्तर नहीं मिला तो वे निरुद्देश्य ही वज्रावर्त धनुष को टंकारने लगे। वे बार बार मूर्च्छित होते और पुनः चेत आने पर निरर्थक प्रलाप करने लगते।

इधर रामचन्द्र जी की यह दशा थी, उधर लक्ष्मण खरदूषण के सैनिकों से अकेले युद्ध कर रहे थे। इतने में चन्द्रोदर का पुत्र विराधित वहाँ आया और लक्ष्मण से कहने लगा—'देव! हमारा अलंकारपुर नगर हमसे खरदूषण ने छीन लिया है। आपकी कृपा से अब वह हमें मिल जायगा। आप खरदूषण से युद्ध करें और मैं उसके दुष्ट सैनिकों से लड़ता हूँ। यों कह कर विराधित तो सैनिकों से युद्ध करने लगा और लक्ष्मण खरदूषण से युद्ध करने लगे। लक्ष्मण ने उसे सात बार रथविहीन कर दिया। वह हाथी पर चढ़ कर युद्ध करने लगा तो लक्ष्मण के बाण से उसका हाथी भी मारा गया। तब दोनों में आमने सामने पैदल ही युद्ध होने लगा। लक्ष्मण ने सूर्यहास तलवार से उसका सिर काट दिया। उधर खरदूषण का सेनापति सुभग दूषण विराधित से जूझ रहा था। लक्ष्मण ने उसके वक्षस्थल पर भिन्दमाल का करारा प्रहार किया और वह भी निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़ा। सेनापति के मरते ही सेना भाग खड़ी हुई। लक्ष्मण ने सबको अभयदान दिया और शत्रु सेना की सामग्री विराधित को सौंप कर लक्ष्मण शीघ्रता से राम के पास पहुँचे। वहाँ सीता के बिना राम को मूर्च्छित देखकर लक्ष्मण ने उन्हें सचेत किया और पूछा—'देव! सीता कहाँ है?' राम ने लक्ष्मण को बिना घाव के देखा तो वे प्रसन्न हुए। किन्तु फिर शोक की घटा उमड़ पड़ी और विह्वल होकर बोले—पता नहीं, सीता को कोई दुष्ट हर ले गया या पाताल खा गया या उसे आकाश निगल गया।' लक्ष्मण ने उन्हें बड़ी सान्त्वना दी—'देव! इस प्रकार शोक करने से क्या मिलेगा।' और उनके हाथ-मुँह धोए।

कुछ देर पश्चात् विराधित अपनी सेना सहित आकाश-मार्ग से वहाँ आया। लक्ष्मण ने राम से कहा—

यह राजा चन्द्रोदर का पुत्र विराधित है। इसने युद्ध में मेरी बड़ी सहायता की है।' विराधित ने राम को नमस्कार किया और कहने लगा—'महाराज ! आप जैसे पुरुषोत्तम को पाकर मैं कृतार्थ हुआ। मुझे कुछ आज्ञा दीजिये।' यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'मित्र ! किसी ने मेरे भाई की पत्नी हर ली है। यदि वह न मिली तो भाई उसके वियोग में प्राण दे देंगे और इनके बिना मैं भी जीवित नहीं रहूँगा। इनके प्राणों के आधार पर ही मेरे प्राण हैं। अतः तुम कुछ प्रयत्न करो।' विराधित सान्त्वना भरे शब्दों में बोला—'देव ! आप कुछ चिन्ता न करें। मैं आपकी पत्नी को अवश्य खोज लाऊँगा।'

उसने तत्काल अपने योद्धाओं को सीता की खोज के लिए दसों दिशाओं में भेज दिया। उन्होंने सब कहीं छान मारा किन्तु सीता का कुछ पता न चला। वे कुछ काल के बाद लौट आये। तब राम निराश होकर बोले—'मेरे भाग्य में दुःख ही लिखे हैं। माता-पिता से बिछुड़ कर मैं इस जंगल में आया, किन्तु दुर्भाग्य ने यहाँ भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा। सीता के बिना मैं अब एक पल भी जीवित नहीं रहूँगा। आप लोग घर जाइये और सुखपूर्वक रहिये।' इस प्रकार राम को विलाप करते देखकर लक्ष्मण भी रोने लगे।

तब विराधित ने उन्हें आश्वासन दिया—'देव ! इस तरह शोक करने से तो सीता मिलेगी नहीं। आप धैर्य रख कर कुछ उपाय कीजिये। जीवन रहेगा तो सीता भी मिल जायगी। खरदूषण मारा गया है, अतः उसके पक्ष के रावण, कुम्भकर्ण, विभीषण, मेघनाद, इन्द्रजीत आदि अभी चढ़कर आवेंगे। अतः आप अलंकारपुर चलिये। वहाँ मैं शीघ्र अपने योद्धाओं को सीता का पता लगाने भेजूँगा और भामण्डल के साथ मिल कर मैं और वे दोनों पता लगायेंगे। यदि मैं सीता का पता न लगा पाया तो अपने प्राण त्याग दूँगा।' इस प्रकार उसके वचनों से आश्वस्त होकर सब लोग अलंकारपुर चले। वहाँ जाकर नगर को घेर लिया और उस पर अधिकार कर लिया। चन्द्रनखा पश्चिम द्वार से अपने पुत्र के साथ निकल भागी। विराधित ने राम और लक्ष्मण को एक सुन्दर महल में ठहरा दिया। पुरजन अपने राजा को पुनः पाकर बड़े हर्षित हुए। सब लोग बैठकर सीता की खोज का उपाय सोचने लगे। किन्तु उस महल में भी राम को सीता के बिना सब कुछ सूना-सूना लगता था। उन्हें कुछ देर भगवान की पूजा करने से शान्ति मिलती थी।

रावण विमान में ले जाते हुए सीता को समझाने लगा—'सुन्दरी ! तुम क्यों शोक करती हो। कहाँ वह दरिद्री राम और कहाँ त्रिखण्डपति मैं। मेरे पास संसार की सारी संपदायें हैं। तू राम का ध्यान छोड़कर मेरे साथ भोग कर और आनन्दपूर्वक शेष जीवन बिता। मैं तुझे अपनी अठारह हजार रानियों में पटरानी का पद दूँगा।' यह कहकर उसने सीता की ओर ज्योंही हाथ बढ़ाया, सीता बड़े क्रोध में बोली—'पापी ! खबरदार जो मुझे स्पर्श किया। परस्त्री गमन से तू नरक में पड़ेगा। यदि तूने मुझे स्पर्श करने का प्रयत्न किया तो सती के शील से तू अभी भस्म हो जायगा।' रावण भयभीत होकर पीछे हट गया और लंका में जाकर अपने महलों के पीछे अशोक उद्यान में सीता को ठहरा दिया।

लंका के उद्यान में सीता

तभी चन्द्रनखा अपने पुत्र सहित बाल बिखेर कर विलाप करती हुई वहाँ आई। उसने अपने पुत्र और पति के वध का समाचार रावण को सुनाया। रावण के घर में हाहाकार मच गया। तब रावण ने उसे समझाते हुए कहा—'बहिन ! तू शोक मत कर। मैं शीघ्र तेरे पति के हत्यारे का वध करके बदला लूँगा। तू यहाँ आनन्दपूर्वक रह।' इस प्रकार चन्द्रनखा को सान्त्वना देकर रावण अन्तःपुर में जाकर खेदखिन्न होकर शय्या पर पड़ गया। तब उसकी रानी मन्दोदरी आकर कहने लगी—'नाथ ! आप इतने शोकग्रस्त क्यों हैं। खरदूषण मारा गया तो क्या हुआ।' तब रावण कहने लगा—'देवि ! तुम शपथ खाओ कि मेरी बात सुनकर तुम क्रोध नहीं करोगी।' तब मन्दोदरी ने शपथ खाई। तब रावण बोला-'एक भूमिगोचरी की स्त्री सीता को लाकर मैंने उद्यान में रक्खा है। अनेक उपाय करने पर भी वह मेरे अनुकूल नहीं होती। यदि तुम मुझे जीवित देखना चाहती हो तो तुम जाकर उसे अनुकूल करने का प्रयत्न करो।' मन्दोदरी यह सुनकर बोली—'अच्छी बात है। मैं उसे वश में करके तुमसे मिलाऊँगी।'

यह कहकर मन्दोदरी अशोक उद्यान में सीता के पास पहुँची और समझाने लगी—'लड़की ! तू यहाँ

आकर उदास क्यों है। जिसे रावण जैसा बली त्रिखण्डाधिपति पति प्राप्त हो रहा हो, उसे शोक करना उचित नहीं है। तेरे राम-लक्ष्मण रावण की तुलना में अति तुच्छ हैं। यदि तू महाराज रावण की बात स्वीकार नहीं करेगी तो रावण कुपित होकर क्षणभर में राम और लक्ष्मण को मार डालेंगे। यदि तूने समझ से काम लिया तो तू पटरानी बनकर जीवन का आनन्द उठायेगी।'

यह सुनकर अश्रुपूरित नयनों से मन्दोदरी को देखती हुई सीता बोली—'माता! सतियों के मुख से ऐसे वचन नहीं निकलने चाहिये। मेरा शरीर टुकड़े-टुकड़े कर दिया जाय, तब भी मैं राम को छोड़ अन्य पुरुष की इच्छा नहीं कर सकती। पर-पुरुष चाहे इन्द्र चक्रवर्ती हो क्यों न हो।'

इधर ये बातें हो ही रही थीं कि काम से व्याकुल रावण वहाँ आया और मुस्कराता हुआ सीता को समझाने लगा। किन्तु सीता ने फटकारते हुए करारा उत्तर दिया। तब रावण ने क्रोधित होकर विद्याबल से वहाँ घोर अंधकार कर दिया। नाना प्रकार के फुंकारते हुए विषधर और भयानक जन्तु सीता को डराने के लिये भेजे। किन्तु सीता राम के ध्यान में निमग्न रही, वह भयभीत नहीं हुई।

तब रावण वहाँ पर ही पर्दा डालकर मंत्रियों से मंत्रणा करने लगा। वहाँ सीता के रुदन के शब्द विभीषण के कानों में पड़े। वह पर्दा उठाकर सीता के पास पहुँचा और पूछने लगा—'बहिन! तू किसकी पुत्री है और यहाँ बैठी क्यों रुदन कर रही है।' तब सीता ने उत्तर दिया—'भाई! मैं मिथिलापति जनक की पुत्री और अयोध्यापति दशरथ की पुत्र-वधू हूँ। वन में जब मेरे पति राम और देवर लक्ष्मण युद्ध को गये थे तो मुझे अकेली पाकर पापी रावण मुझे हर लाया है। अतः आप मुझे यहाँ से छुड़ाकर मेरे पति राम के पास पहुँचाने का कोई उपाय करो।'

सीता के मुख से ये वचन सुनकर विभीषण को बड़ा क्रोध आया। वह रावण के पास आकर कहने लगा—'देव! आप ज्ञानवान हैं, फिर भी आपने परस्त्री हरण जैसा अपवादकारी निंद्य पाप क्यों किया? आप यह तो जानते ही हैं कि परस्त्री समागम से कुल की अपकीर्ति और नाश हो जाता है। अतः आप दया करके सीता को उसके पति के पास पहुँचा दें।' किन्तु यह सुनकर निर्लज्ज रावण बड़ी धृष्टता से बोला—'त्रिखण्ड में जितनी भी सुन्दर वस्तुयें हैं, सब मेरी हैं।' यह कहकर वह मारीच आदि से बात करने लगा। तब मारीच कहने लगा—'नाथ! राजाओं को सदा न्याय-मार्ग पर चलना चाहिये। लोकनिंद्य काम करने से वंश का नाश हो जाता है।'

रावण को मारीच का उपदेश रुचिकर नहीं लगा और वह वहाँ से उठकर चल दिया। उसने अपना सारा वैभव सीता के आगे से निकाला, जिससे सीता प्रभावित हो किन्तु सीता पर इसका कुछ प्रभाव नहीं पड़ा। वह तो सदा राम के ही चरणों का ध्यान करती थी। उसने मन में संकल्प कर लिया कि जब तक पुनः पति से समागम न होगा तब तक अन्न-जल ग्रहण नहीं करूँगी। रावण ने सीता को अपनी ओर आकर्षित करने के लिये अनेक चतुर स्त्रियाँ सीता के पास रख दीं, जो रत्न, मुक्तक आदि के अनेक आभूषण और शृंगार की सामग्री सीता के पास लाकर रखतीं, उसे प्रेमभरी रसीली बातें सुनातीं, कोई उसे भयभीत करती, किन्तु सीता उनको न कुछ उत्तर देती और न ही बोलती। वे जाकर रावण को रिपोर्ट देती कि सीता पर हमारी बातों का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता। रावण काम विमूढ़ हुआ सीता का ही दिनरात ध्यान करता।

तब एक दिन विभीषण ने मंत्रि-परिषद बुलाई और कहने लगा—'देखो, रावण सीता को ले आया है। इससे बड़ा अनर्थ होगा। न्याय मार्ग पर चलने वाले हनुमान आदि राजा विरुद्ध हो जायेंगे। रावण का दाहिना हाथ खरदूषण मारा ही गया है। राम की सहायता पाकर विराधित बलवान हो गया है। वानरवंशी अपनी ही समस्याओं में उलझे हुए हैं। भगवान के मुख से आप लोग सुन ही चुके हैं कि दशरथ के पुत्रों के हाथ से रावण की मृत्यु होगी। अतः आप लोग कुछ उपाय करें कि यह अनर्थ टल सके।' तब मंत्रियों ने निश्चय किया कि लंका की सुरक्षा का पूर्ण प्रबन्ध करना चाहिये। प्रभावशाली पुरुषों को मधुर वाक्यों से अपने पक्ष में कर लेना चाहिये और दुष्ट जनों को धनादि से परितृप्त कर अपने अनुकूल करना चाहिये। रावण का जिसमें हित हो, हमें वही कार्य

करना चाहिये। सीता के बिना राम जीवित नहीं रहेगा और राम के मरने पर लक्ष्मण स्वयं मर जायगा। अतः हमें तब तक धैर्य रखना चाहिये।

इस निर्णय के अनुसार विभीषण ने लंका के चारों ओर यंत्रों का एक दूसरा परकोट बनवाया, खाई खुदवादी। चारों ओर रक्षा के लिए सुभट और दिक्पाल नियुक्त कर दिये और युद्ध की सी तैयारी होने लगी।

सुग्रीव की स्त्री सुतारा के प्रति आसक्त विद्याधर साहसगति पर्वत पर जाकर कामरूपिणी विद्या सिद्ध कर किष्किंधापुरी आया। उस समय सुग्रीव नहीं बाहर गया हुआ था। अतः साहसगति सुग्रीव का रूप बनाकर महलों में गया और सुतारा को पकड़ने लगा। किन्तु रूप बना लेने पर भी साहसगति को सुग्रीव के समान बातें नहीं आती थीं, न वह वहाँ के शयनासन, द्वारपालों आदि से ही परिचित था। अतः सुतारा को सन्देह हो गया और वह उससे बचकर दूसरे कक्ष में चली गई। तभी असली सुग्रीव नगर में आया। उसे देखकर लोग आश्चर्य करने लगे—एक तो सुग्रीव पहले आया ही था, यह दूसरा कौन आ गया। लोगों के आश्चर्य को देखता हुआ असली सुग्रीव महलों में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही छद्मवेशी साहसगति उससे लड़ने आया। दोनों ओर की सेनायें भी आ डटीं। तब मंत्रियों ने सोचा—'असली सुग्रीव कौन सा है, यह निर्णय करना कठिन है। फिर व्यर्थ ही इन गरीब सैनिकों का अकारण वध क्यों कराया जाय।' यह सोचकर उन्होंने दोनों सुग्रीवों को उत्तर और दक्षिण दिशा में ठहरा दिया। सुतारा ने बताया कि जो पहले आया था, वह नकली सुग्रीव है। जामवन्त ने भी उसका समर्थन किया। किन्तु मंत्रियों ने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया। वहाँ का शासन-सूत्र बाली के पुत्र चन्द्ररश्मि ने संभाल लिया तथा प्रतिज्ञा की कि जो भी सुग्रीव महलों में आवेगा, उसका ही वध करूँगा।

सुग्रीव से राम की मित्रता

असली सुग्रीव बेचारा बड़ा दुखी हुआ। उसने रावण तथा अपने मित्र हनुमान से सहायता मांगी। हनुमान सेना लेकर आया तो नकली सुग्रीव ने उसका बड़ा स्वागत किया। तब हनुमान भी असली और नकली सुग्रीव की पहचान नहीं कर पाया और वह वापिस चला गया। तब सुग्रीव खरदूषण से सहायता लेने के लिए दण्डकारण्य पहुँचा। वहाँ हाथी, घोड़ों और मनुष्यों की लाशों को देखकर सोचने लगा कि यहाँ युद्ध किसका हुआ है। उसने एक मनुष्य से इस बारे में पूछा तो उसने खरदूषण की मृत्यु, सीता हरण आदि वृत्तान्त कह दिया। तब सुग्रीव ने सोचा कि जिन्होंने खरदूषण जैसे वीर को मार दिया, वे अवश्य लोकोत्तर वीर पुरुष हैं। उन्हीं से सहायता लेनी चाहिए। अतः उसने एक दूत राजा विराधित के पास दोस्ती के उद्देश्य से अलंकारपुर भेजा। दूत ने जाकर विराधित से सब बातें कहीं। विराधित सोचने लगा—राम के संसर्ग से न जाने क्या-क्या लाभ होंगे। देखो, सुग्रीव भी मेरी शरण में आ रहा है! यह विचार कर उसने दूत से कह दिया—सुग्रीव से कहना, वह राम की शरण में आ जाय। वे ही उसका दुःख दूर कर सकेंगे।

दूत ने सुग्रीव से जाकर सब बातें कह दीं। सुग्रीव अपनी सेना के साथ अलंकारपुर जिसे पाताल लंका भी कहते थे-आया। सेना का कोलाहल सुनकर लक्ष्मण ने विराधित से पूछा—'यह किसकी सेना आ रही है।' तब विराधित ने सुग्रीव का परिचय देते हुए कहा—वह वानर वंशी राजा राम की सहायता करने के लिए आ रहा है। तभी सुग्रीव अपने मंत्रियों सहित वहाँ आया। राम और लक्ष्मण उससे प्रेम से मिले। तब राम ने सुग्रीव के मंत्री जामवन्त से उसके आने का कारण पूछा। जामवन्त बोला—'देव! यह चौदह अक्षौहिणी सेना का अधिपति वानर वंशी राजा सुग्रीव है। जब यह तीर्थ यात्रा को गया हुआ था तो कोई मायावी पुरुष सुग्रीव का रूप बनाकर किष्किंधापुरी में आ गया और वहाँ रहने लगा। सुग्रीव इससे बड़ा दुखी है। इन्होंने हनुमान से सहायता मांगी, किन्तु उन्होंने इनकी कोई सहायता नहीं की। अतः ये आपकी शरण में आये हैं। आप ही इनका दुःख दूर कर सकते हैं।'

राम ने सोचा—यह भी मेरी तरह ही पत्नी-वियोग से दुखी है। यह मेरा कार्य अवश्य करेगा। यह सोचकर वे सुग्रीव से बोले यदि तू मेरी पत्नी सीता का पता लगाकर लावेगा तो मैं नकली सुग्रीव को निकाल कर तुझे तेरी सुतारा और तेरा राज्य दिला दूँगा।' यह सुनकर सुग्रीव बोला—'महाराज! मैं वचन देता हूँ कि यदि

सात दिन के भीतर मैं सीता का पता लगाकर न लाऊँगा तो अग्नि में प्रवेश कर जाऊँगा।' राम उसकी बातों से बड़े प्रसन्न हुए और दोनों ने प्रतिज्ञा की—हम परस्पर विश्वासघात नहीं करेंगे।

सुग्रीव राम और लक्ष्मण को रथ में बैठाकर सेना सहित किष्किन्धापुरी आया और उसने एक दूत नकली सुग्रीव के पास भेजा। दूत ने उससे जाकर कहा—तुम या तो राजा सुग्रीव की शरण में जाओ या युद्ध के लिए तैयार हो जाओ।' नकली सुग्रीव युद्ध के लिए तैयार हो गया और सेना लेकर आ डटा। दोनों पक्षों में जोरदार युद्ध हुआ। विषयलम्पटी साहसगति ने सुग्रीव पर प्रहार किया। इससे सुग्रीव मूर्छित हो गया। उसे मरा हुआ जानकर साहसगति आनन्दपूर्वक नगर में चला गया। होश आने पर सुग्रीव राम से बोला—प्रभो! हाथ में आया हुआ चोर निकल गया। आपने मेरी सहायता नहीं की।' तब रामचन्द्र जी बोले—'मैं युद्ध के समय तुम दोनों के रूप रंग में अन्तर नहीं जान पाया। अतः मैंने मारना उचित नहीं समझा।'

इसके बाद राम ने साहसगति को पुनः युद्ध के लिए ललकारा और युद्ध के लिए उसके सम्मुख आये। उन्होंने वज्रावर्त धनुष पर डोरी चढ़ाई और उसे टंकारने लगे। उसकी टंकार सुनकर साहसगति की कामरूपिणी विद्या भय के मारे भाग गई। अतः सुग्रीव का रूप हटकर वह पुनः साहसगति के रूप में आ गया। उसकी ओर की सारी सेना उसका असली रूप देखकर सुग्रीव की ओर आ गई। तभी राम ने तलवार से उसका सिर काट दिया। सेना में जय-जयकार होने लगा। सुग्रीव ने राम-लक्ष्मण का खूब आदर किया। दोनों भाई नगर के बाहर एक मनोरम उद्यान में ठहर गये। सुग्रीव बहुत दिनों बाद सुतारा से मिला और वह विषय-भोगों में इतना निमग्न हो गया कि राम से की हुई प्रतिज्ञा भी भूल गया।

जब राम ने देखा कि सुग्रीव अपनी प्रतिज्ञा को पूरा नहीं कर रहा है तो उन्हें बड़ा क्रोध आया। वे लक्ष्मण के साथ एक दिन सुग्रीव के महलों में पहुँचे और उससे कहा—'रे दुष्ट! सुतारा को पाकर तू सुख से घर में बैठ गया है।' इस प्रकार कह कर राम उसे मारने को तैयार हुए तो लक्ष्मण ने बीच में पड़कर राम से कहा—देव! इस पापी को क्षमा करें। यह अपने कार्य को भूल गया है।' फिर भय से काँपते हुए सुग्रीव से बोले—'राजन्! महान पुरुषों को उपकार नहीं भूलना चाहिये।' तब सुग्रीव राम के पैरों में पड़ कर क्षमा मांगने लगा और बोला—'प्रभो! आप मेरी शक्ति देखिये। मैं अभी सीता का पता लगा कर लाता हूँ।' यों कहकर उसने अपने सुभटों को आवश्यक निर्देश देकर चारों ओर भेज दिया और स्वयं भी विमान में बैठकर वहाँ से चल दिया।

सुग्रीव अनेक नगरों, वनों और पर्वतों पर सीता को खोजता हुआ जा रहा था। तभी उसे कंचुद्वीप के शिखर पर एक वृक्ष के नीचे एक व्यक्ति बैठा दिखाई दिया। सुग्रीव उसके पास पहुँचा। वह व्यक्ति भय से काँपने और रोने लगा। उसने समझा कि सुग्रीव को रावण ने मेरा वध करने भेजा है। सुग्रीव ने उसके पास जाकर अभय देते हुए कहा—तू कौन है, काँपता क्यों है, भय मत कर।' तब उस व्यक्ति ने कहा—'राजन्! मैं जटी का पुत्र रत्नजटी हूँ। मैं जब धातकीखण्ड के चैत्यालयों की वन्दना करके आकाश मार्ग से लौट रहा था तो मेरे कानों में सीता के रोने की आवाज आई। वह विलाप करती हुई 'हाय राम हाय लक्ष्मण, हाय भाई भामण्डल कह रही थी। मैंने उसे पहचान लिया। मैं तुरन्त रावण के पास गया और उसे ललकारते हुए कहा—'रे पापी! यह राम की पत्नी और मेरे स्वामी भामण्डल की बहन है। इसे तू कहाँ लिये जा रहा है।' यह कह कर मैं उससे लड़ने लगा। तब रावण ने क्रोध में आकर मेरी सारा विद्यायें नष्ट कर दीं और मैं इस कंचुवन में आकर गिरा। मैं वहाँ से उठकर पर्वत पर आ गया।'

लक्ष्मण द्वारा कोटिशिला उठाना

सुग्रीव यह सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने कहा—'तुम चिन्ता मत करो कि तुम्हारी विद्यायें नष्ट हो गई हैं। तुम हमारे भाई हो। आओ, हम राम के पास चलें।' यों कह कर सुग्रीव रत्नजटी को राम के पास लिवा लाया और राम से बोला—'प्रभो! सीता का पता लग गया है, विस्तृत समाचार इससे पूछिये।' राम ने रत्नजटी से सारा समाचार ज्ञात किया और बार बार पूछने लगे-भाई! सत्य कहना, तुमने मेरी सीता देखी है? रत्नजटी बोला—प्रभो! सचमुच मैंने आपके वियोग से दुखी सीता को देखा है। लंका का राजा पापी रावण उसे हर कर ले गया

है।' तब राम ने प्रसन्न होकर विद्याधर को सुन्दर मणियों का हार और वस्त्र पुरस्कार में दिये और कहा कि तेरा राज्य भी तुझे वापिस दिलाऊँगा।

इसके बाद राम ने क्रोध में भरकर विद्याधरों से पूछा कि लंका यहाँ से कितनी दूर है और दुष्ट रावण कौन है? यह सुनकर विद्याधर डर गये। कोई रावण के बारे में बताने का साहस नहीं कर सका। बड़ी कठिनाई से जामवंत ने रावण के पराक्रम का परिचय दिया और कहा—उससे लड़ने की सामर्थ्य संसार में किसी की नहीं है। आप सीता का विचार छोड़ दें।

तब लक्ष्मण बोले—'उस अधम रावण को हम देखेंगे। वह शक्तिशाली होता तो यों चोरों की तरह सीता को चुरा कर न ले जाता। आप लोग लंका का मार्ग बता दीजिये।' तब जामवन्त बोला—पुरुषोत्तम राम! आप यह हठ छोड़ दीजिये। एक बार रावण ने भगवान अनंतवीर्य से पूछा था कि मेरी मृत्यु किसके हाथ से होगी। उस समय भगवान ने उत्तर दिया था कि जो अपने पराक्रम से कोटिशिला उठा लेगा, वही चक्र द्वारा तेरा वध करेगा।

यह सुनकर लक्ष्मण बोले—'उस शिला को मैं उठाऊँगा।' लक्ष्मण की यह बात सुनकर सुग्रीव, नल, नील, विराधित राम-लक्ष्मण को विमान में बैठाकर कोटिशिला के निकट गये। यह शिला नासिगिरि के ऊपर स्थित है। यहाँ से अनेक मुनि सिद्ध हुए हैं। उन्होंने जाकर सुर-असुरों से पूजित उस शिला की अक्षत-पुष्पादि से पूजा की। बाद में लक्ष्मण ने सिद्ध भगवान को नमस्कार कर अपने पराक्रम से उस कोटिशिला को उठाया। लक्ष्मण ने उस शिला को जांघों तक उठाया। राम आदि सभी यह देखते रहे। देवों ने पंचाश्चर्य किये। सब उपस्थित लोगों को विश्वास हो गया कि सचमुच में लक्ष्मण नारायण हैं। सब लोग उसी दिन विमान में अपने-अपने नगर में वापिस आ गये।

किष्किंधापुरी वापिस आने पर राम ने कहा—विद्याधरो! आप लोग अब देर न कीजिये और लंका पर जल्दी चढ़ाई करके दुखी सीता को छुड़ाइये।' तब विराधित बोला—'देव! आप युद्ध चाहते हैं या सीता? यदि बिना युद्ध के सीता मिल जाय तो यह श्रेष्ठ मार्ग रहेगा। हम पहले किसी नीतिज्ञ चतुर व्यक्ति को रावण के पास भेजते हैं। शायद वह समझाने-बुझाने से सीता को वापिस करने पर सहमत हो जाय।

हनुमान का लंका-गमन

राम ने भी इस उपाय को स्वीकार कर लिया। सबने परामर्श किया कि किस व्यक्ति को भेजना उचित रहेगा। सबने एक मत से कहा—हनुमान ही उपयुक्त व्यक्ति है। वही इस कार्य को कर सकता है और रावण को समझा भी सकता है। अतः एक दूत को तत्काल विमान द्वारा हनुमान के पास भेजा गया। उसने जाकर हनुमान से खरदूषण और शम्बूक की मृत्यु, और सुतारा की प्राप्ति आदि के सब समाचार सुनाये। अपने पिता खरदूषण और भाई शम्बूक की मृत्यु के समाचार सुन कर हनुमान की पत्नी अनंगकुसुमा विलाप करने लगी और हनुमान की दूसरी पत्नी पद्मरागा अपने पिता सुग्रीव के कुशल समाचार सुनकर हर्ष करने लगी और जिनालय में जाकर नृत्य गान करने लगी। हनुमान ने तब अनंगकुसुमा को धैर्य बंधाया। बाद में सेना लेकर वह किष्किंधापुर चला। सुग्रीव आदि राजाओं ने हनुमान का प्रेम से स्वागत किया। सुग्रीव ने सुतारा की प्राप्ति और रामचन्द्र जी के शौर्य आदि के बारे में विस्तारपूर्वक सब समाचार बताये। तब सब लोग रामचन्द्र जी के पास गये। हनुमान ने राम से कहा—'देव! मैं रावण को समझा कर अवश्य सीता को वापिस लाऊँगा। आप निश्चिन्त रहें।'

जब हनुमान चलने लगा तो जामवंत ने उसे समझाया—वानरवंशियों को एकमात्र तुम्हारा ही सहारा है। अतः तुम लंका में सावधानी से जाना और किसी के साथ विरोध मत करना।' हनुमान ने उसकी बात मान ली और वहाँ से चलने लगा। तब रामचन्द्र जी ने हनुमान को छाती से लगा कर कहा—'तुम सीता से जाकर कहना कि राम तुम्हारे वियोग में न सोते हैं, न खाते हैं, न बैठते हैं। वे पागलों की तरह इधर-उधर घूमते रहते हैं। वे जानते हैं कि तुम शीलवती हो। उनके वियोग में तुम प्राण त्याग देने पर तुली हो। किन्तु मनुष्य-जन्म बड़ा दुर्लभ है। अतः प्राणों की रक्षा का यत्न करो। शीघ्र ही तुम्हारा और उनका मिलाप होगा। तुम उनकी आशा रक्खो और भोजन करो।' इस प्रकार कहकर रामचन्द्र जी ने निशानी के लिए अंगूठी दी और कहा—वीर! तुम सीता को मेरी यह निशानी दे देना और उसे और भी विश्वास दिलाने के लिये उससे कहना कि रामचन्द्र जी ने कहा है

कि हम तुम दोनों ने दण्डक वन में चारण मुनि को आहार दान दिया था, वंशगिरि पर्वत पर हम लोगों ने मुनियों का उपसर्ग दूर किया था और जब उस दुष्ट कपिल ब्राह्मण ने तुम्हें जल नहीं दिया था, तब मैंने तुम्हें रामगिरि में जल पिलाया था। जब तुम लौटो तो सीता का चूड़ारत्न ले आना।'

हनुमान ने कहा – 'देव ! ऐसा ही करूँगा।' और राम के चरणों में नमस्कार कर सब विद्याधरों से कहा – 'जब तक मैं लौट कर वापिस न आऊँ, तब तक आप लोग यहीं रहना और इन दोनों महापुरुषों की सेवा करना।'

यह कह कर हनुमान वहाँ से सेना सहित सानन्द विदा हुआ। मार्ग में उसे महेन्द्रपुर नगर दिखाई दिया जो उसकी ननिहाल थी। उसे देख कर हनुमान को बड़ा क्रोध आया कि जब मैं पेट में था, तब मेरे नाना ने मेरी माँ को बड़ा दुःख दिया था। अतः क्रोध में भर कर हनुमान ने रणभेरी बजा दी। दोनों ओर की सेनाओं में घोर युद्ध हुआ। अन्त में हनुमान ने अपनी लांगूल विद्या से महेन्द्र को बांध लिया। तब मंत्रियों ने उन्हें छुड़ाया। नाना और धेवता तब प्रेम से मिले। राजा महेन्द्र ने अपने धेवते का बड़ा सम्मान किया। चलते समय हनुमान ने कहा—आप अपने पुत्रों और सेना को लेकर शीघ्र रामचन्द्र जी के पास पहुँच जायँ।

इसके पश्चात् हनुमान मार्ग में अपनी माता से मिला। आगे बढ़ने पर हनुमान ने देखा कि उदधिनामक द्वीप पर दधिमुख नगर के पास बन जल रहा है और उसमें दो चारण मुनि तपस्या कर रहे हैं। हनुमान ने बड़ी भक्ति और करुणा से अपनी विद्या द्वारा वहाँ जल बरसा कर अग्नि को शान्त किया और मुनि-चरणों की पूजा की। उपसर्ग दूर होते ही तीन कन्याओं को विद्या सिद्ध हो गई। वे तीनों दधिमुख नगर के गंधर्व राजा की पुत्रियाँ थीं। जिनके नाम चन्द्ररेखा, विद्युत्प्रभा और तरंगमाला थे। उन्होंने आकर पहले तो मुनियों की वन्दना की, फिर हनुमान को नमस्कार किया। हनुमान के पूछने पर उन कन्याओं ने बताया कि हमारे पिता ने एक अवधिज्ञानी मुनि से पूछा था कि हमारा पति कौन होगा। तब उन्होंने कहा था कि जो साहसगति को मारेगा, वही इनका पति होगा। उधर अंगारकेतु विद्याधर हमें चाहता था। हम मुनि के बचनों पर विश्वास करके मनोनुगामिनी विद्या सिद्ध करने बारह दिन पहले इस बन में तपस्या करने आई थीं और ये मुनि आठ दिन पहले आये थे। तब अंगारकेतु ने बड़े उपसर्ग किये और उसी ने बन में आग लगादी। उपसर्ग के कारण हमें बारह वर्ष में सिद्ध होने वाली विद्यायें बारह दिन में सिद्ध हो गई। आपने आग बुझाकर मुनिराज और हमें जलने से बचा लिया।'

हनुमान ने कन्याओं की प्रशंसा करते हुए रामचन्द्र जी का सारा वृत्तान्त सुनाया। यह समाचार गन्धर्वराज के पास पहुँचा तो वह नगरवासियों के साथ वहाँ आया और हनुमान से मिलकर कन्याओं को लेकर सेना सहित रामचन्द्र जी के पास चल दिया और वहाँ जाकर कन्याओं का विवाह रामचन्द्र जी के साथ कर दिया।

हनुमान चला जा रहा था कि उसकी सेना एक मायामई यन्त्रनिर्मित परकोटे से रुक गई। जब हनुमान को यह ज्ञात हुआ कि यह सब रावण की सुरक्षा के लिये भारी तैयारी है तो हनुमान ने कुछ देर में ही उस परकोटे के खण्ड-खण्ड कर दिये और शालिविद्या का हृदय भेद दिया। जब इस कोट के रक्षक वज्रमुख को, जिसने रावण की आज्ञा से इस कोट का निर्माण किया था—पता चला कि कोट ध्वस्त कर दिया है, वह हनुमान से सेना सहित लड़ने आया। दोनों में युद्ध हुआ। अन्त में हनुमान ने उसे मार दिया। तब उसकी पुत्री लंकासुन्दरी युद्ध के लिये आई। किन्तु हनुमान का मोहन रूप देखकर उस पर मोहित हो गई और सन्धि कर ली।

वहाँ से चलकर हनुमान सर्वप्रथम न्यायशील विभीषण के घर पर गया। दोनों परस्पर गले मिले। फिर हनुमान ने विभीषण से कहा—'राजन् ! आपके भाई ने परस्त्री हरण करके बड़ा लोक निंद्य कार्य किया है। आप उन्हें इस काम से रोकिये, नहीं तो व्यर्थ जन-धन हानि होगी।' विभीषण बोला—'मैंने उन्हें बहुत समझाया बुझाया है, किन्तु वे मेरी एक नहीं सुनते। सीता को ग्यारह दिन भोजन छोड़े हुए हो गये हैं किन्तु उन्हें दया नहीं आती। आप जाकर सीता को समझा कर भोजन कराइये। मैं तब तक रावण को समझाता हूँ।'

हनुमान यह सुनकर अशोक उद्यान में पहुँचा और अशोक वृक्ष के नीचे जहाँ सीता बैठी हुई थी, वहाँ पहुँचा। उसने देखा—सीता अपने हाथ की बायीं हथेली पर गाल टेके हुए हैं, आंखों से आंसू झर रहे हैं। गर्म गर्म श्वास निकल रहे हैं, बाल बिखरे हुए हैं और राम का ध्यान कर रही है। हनुमान ने समझ लिया कि राम क्यों इसके गुणों

का स्मरण कर व्याकुल हो रहे हैं। तब हनुमान अपनी विद्या से वृक्ष पर रूप बदल कर जा बैठे और राम को दी हुई अंगूठी सीता की गोद में डाल दी। अंगूठी राम नामाङ्कित थी। अंगूठी को देख कर सीता बड़ी हर्षित हुई, मानो साक्षात् राम के ही दर्शन हो गये हों। सीता को प्रसन्न देखकर विद्याधरियों ने जाकर रावण को समाचार दिया। रावण ने समझा—मेरा कार्य सिद्ध हो गया। उसने उन विद्याधरियों को खूब पुरस्कार दिया और मन्दोदरी से कहा—तुम अन्य रानियों के साथ जाकर सीता को प्रसन्न करो।' मन्दोदरी अन्य रानियों को लेकर सीता के पास पहुँची और उससे कहा—'तुम्हें प्रसन्न देखकर हमें भी प्रसन्नता है। अब तुम संसार विजयी रावण के साथ आनन्द के साथ भोग करो।' सीता सुनकर बड़ी कुपित होकर बोली—'विद्याधरी! मुझे मेरे पति के समाचार मिल गये हैं इसलिये मैं प्रसन्न हूँ। अब यदि मेरे पति ने यह सब सुन लिया तो रावण जीवित नहीं बचेगा।' फिर सीता कहने लगी—'यहाँ ऐसा मेरा कौन भाई है, जिसने लाकर मुझे राम की अंगूठी दी है।'

हनुमान यह सुनकर वृक्ष से नीचे उतरे और उन विद्याधरियों के समक्ष ही सीता के सामने जा पहुँचे और चरणों में नमस्कार कर कहा—'माता! रामचन्द्र जी की यह अंगूठी मैं लाया हूँ।' सीता द्वारा परिचय पूछने पर हनुमान ने अपना परिचय देते हुए कहा—रामचन्द्र जी आपके वियोग में बड़े दुखी हैं, न खाते हैं, न सोते हैं। दिन-रात आपका ही ध्यान करते रहते हैं।' अपने पति के समाचार पा कर सीता बड़ी प्रसन्न हुई। फिर वह कहने लगी—'हाय! मैं पापिनी तुझे इस समय इस खुशी के समाचारों के बदले कुछ भी नहीं दे सकती।' हनुमान बोला—, माता! आपके दर्शनों से ही मेरा पुण्य-वृक्ष फल गया।' तब सीता बार-बार राम-लक्ष्मण की कुशलता के समाचार पूछने लगी और कहने लगी—'हनुमान! सच कहना, कहीं उनकी अंगुली से गिर जाने के कारण यह अंगूठी तुम उठा तो नहीं लाये। वे इस समय कहाँ हैं। लक्ष्मण खरदूषण से युद्ध करने गये थे। उनके वियोग में कहीं राम ने प्राण तो नहीं त्याग दिये।' तब हनुमान ने कहा—'माता वे इस समय किष्किधापुर में हैं। बहुत से विद्याधर उनके साथ हैं। उन्होंने ही मुझे आपके पास भेजा है।'

तब मन्दोदरी हनुमान से बोली—'अरे कृतघ्न! अब रावण की सेवा छोड़कर विद्याधर होकर भी तूने भूमि गोचरियों की सेवा अंगीकार करली है। अब तेरी कृतघ्नता का फल तुझे शीघ्र मिलेगा! रावण राम-लक्ष्मण सहित तुझे भी शीघ्र मार डालेंगे।' तब हनुमान ने उसे करारा उत्तर देते हुए कहा—'भूमिगोचरी तो तीर्थंकर भी होते हैं। तू राम-लक्ष्मण के पराक्रम को नहीं जानती। इसीलिए तू पटरानी होकर यह दूती का निंद्य कार्य कर रही है। तू देखेगी कि राम-लक्ष्मण के हाथों तेरा पति रावण अब शीघ्र ही मारा जायगा।'

तब मन्दोदरी आदि सीता को मारने झपटी किन्तु हनुमान की एक ही हुंकार से वे भयभीत होकर वहाँ से भाग गईं। तब हनुमान ने सीता से कहा—'माता! आप भोजन कर लीजिये। रामचन्द्र जी ने यह आज्ञा दी है। विभीषण की रानियों ने भी सीता से भोजन करने का बहुत आग्रह किया। बड़ी कठिनाई से सीता ने थोड़ा सा भोजन किया। हनुमान ने फिर निवेदन किया—'माता! आप मेरे कन्धे पर बैठ जाइये। मैं अभी आपको रामचन्द्र जी के पास पहुँचाये देता हूँ।' किन्तु सीता ने कहा—'बिना प्रभु रामचन्द्र जी की आज्ञा के मैं वहाँ नहीं जा सकती। दुनियाँ मेरा अपवाद करेगी। तू विश्वास के लिए यह चूड़ामणि रत्न लेजा और प्रभु से कहना—सीता आपके दर्शनों की लालसा से ही प्राण धारण किये हुए है।' इस प्रकार कह कर सीता ने हनुमान से शीघ्र चले जाने को कहा।

सीता की आज्ञानुसार हनुमान वहाँ से चल दिया। रानियों ने जाकर रावण से शिकायत की। रावण ने नौकरों को आज्ञा दी कि जाकर विद्याधर को पकड़ लाओ। नौकरों को आते देखकर हनुमान ने विद्या से वानर का रूप रख लिया और एक वृक्ष की शाखा में छिप गया। जब हनुमान को कहीं नहीं देखा तो वे इधर-उधर ढूंढने लगे। तब हनुमान ने वृक्ष उखाड़-उखाड़ उन्हें मारना शुरू कर दिया। उसने उस उद्यान को तहस-नहस कर दिया। घुड़शालायें नष्ट कर दीं, गजशालाओं में आग लगा दी। अनेक लोगों को मार डाला। तब कुछ लोगों ने जाकर रावण से फरयाद की—महाराज! कोई भारी दैत्य आया है। उसने अनेक घर ढा दिये, वृक्ष उखाड़ फेंके, अनेक लोगों को मार डाला।' यह सुनकर रावण ने अपने पुत्र मेघनाद से कहा—पुत्र! तू जा, देख तो यह कौन पापी आया है।

मेघनाद हाथी पर चढ़कर राक्षसों के साथ वहाँ आया। उसे देखकर हनुमान ने विद्या से वानर सेना तैयार करी। हनुमान और मेघनाद में युद्ध हुआ। आखिर हनुमान ने मेघनाद को मार भगाया। तब इन्द्रजीत लड़ने आया। दोनों में भयानक युद्ध हुआ। अन्त में इन्द्रजीत ने हनुमान को नागपाश में बाँध लिया और ले जाकर रावण के सामने खड़ा कर दिया।

रावण उसे देखकर अत्यन्त क्रुद्ध होकर बोला – अरे दुष्ट ! तूने लंका में यह ध्वंस क्यों किया, मेरा उद्यान क्यों नष्ट कर दिया। मैंने तुझे प्रभुत्व दिया था और तू राम से जा मिला, जिसकी स्त्री को मैं ले आया हूँ और अब तू उस राम का दूत बन कर आया है। मैं तुझे अभी मारता हूँ।' यों कह कर रावण ने हनुमान को मारने के लिए तलवार उठाई, किन्तु मंत्रियों ने उसे यह कह कर रोक लिया कि दूत अवध्य होते हैं। तब हनुमान ने निर्भय होकर कहा—मैंने तो अभी क्या नाश किया है, किन्तु क्रुद्ध राम शीघ्र ही तेरा नाश करेंगे। परस्त्री चोर रावण तो नरक जायगा ही, किन्तु साथ देनेवाले इस पाप में साथ देने के कारण नरक में जायेंगे। समझलो, अब राक्षसवंशियों का विनाश-काल आ गया है।

तब रावण ने क्रोध में भर कर आज्ञा दी—'इस दुष्ट को नगर के बाहर ले जाकर शूली पर चढ़ा दो।' अनेक सुभट हनुमान को लोहे की साँकलों से बाँध कर लंका के बाजारों में होकर ले चले। लोग हनुमान का उपहास उड़ाने लगे—रावण से विमुख होने का यही फल मिलता है। यह सुनकर हनुमान को क्रोध आ गया। उसने लौह शृंखलायें तोड़दी और आकाश में उड़ गया। उसने नगर का स्वर्णमयी कोट ढा दिया, फाटक तोड़ दिये। सारी लंका में आग लगा दी। रावण का घर, ध्वज, तोरण नष्ट कर दिये। इस प्रकार लंका-दहन कर हनुमान किष्किंधापुरी की ओर चल दिया। वह वहाँ पहुँच कर राम के पास पहुँचा और उन्हें प्रणाम कर खड़ा हो गया। राम ने उसे छाती से लगाकर पूछा—सीता कुशलपूर्वक तो है। तुमने उसे कहाँ देखा।' तब हनुमान ने चूड़ामणि रत्न निकाल कर उनके सामने रख दिया और सीता का कहा हुआ सन्देश सुना दिया। उसे सुनकर राम दुःख से अधीर होकर रोने लगे। तब लक्ष्मण ने उन्हें धैर्य देते हुए कहा—'देव ! दुःख करने से क्या होगा। मैं आज ही लंका में जाकर रावण को मारकर सीता को लाऊँगा।' तब राम को कुछ सान्त्वना मिली और अपने शरीर से आभरण उतार कर प्रेम पूर्वक हनुमान को दे दिये।

लक्ष्मण ने सब विद्याधरों को एकत्रित किया और उनसे कहा—'अब लंका पर चढ़ाई करने का समय आ गया है। अब देर नहीं करनी चाहिये। सब विद्याधर लंका पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गये और सब विमानों में बैठ कर चल दिये। उस दिन प्रभात के समय मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी थी। चलते समय अनेक शुभ शकुन हुए। राम की सेवा में बड़े-बड़े योद्धा थे—नल, नील, सुग्रीव, अंग, अंगद, हनुमान, विराधित, महेन्द्र, प्रश्नकीर्ति, धनगति, भूतनाद, गजस्वन, ब्रजसुख आदि। वे चलते-चलते वेलंधर द्वीप पहुँचे। वहाँ पर नगर के राजा समुद्र से युद्ध हुआ। नल ने उसे जीता हुआ पकड़ लिया। जब उसने रामचन्द्रजी का आधिपत्य स्वीकार कर लिया तो उसे उसका राज्य दे दिया। वहाँ से चल कर सुवेलपुर पहुँचे और वहाँ के राजा सुवेल को जीता। वहाँ से लंका को चले। विमानों से सबने देखा—सोने का कोट, सोने के महल, अत्यन्त वैभवपूर्ण लंका नगरी। सब लोग हंसद्वीप में उतर गये। वहाँ के राजा को जीता और भामण्डल की प्रतीक्षा करने लगे। तब तक लंका में एक दूत भेज दिया।

राम का लंका पर आक्रमण

राम का आगमन सुनकर लंका में कोलाहल मच गया। रावण ने रणभेरी बजा दी। सभी सुभट एकत्रित होकर रावण के पास पहुँचे। रावण को युद्ध के लिये उद्यत देखकर विभीषण उसे समझाने लगा—'देव ! कृपा कर मेरी विनय सुनिये। आप न्याय मार्ग पर चलने वाले हैं। अतः आप राम को सीता सौंप दीजिये। व्यर्थ ही इस अन्याय युद्ध से लाभ नहीं होगा। हमारे वंश का नाश हो जायगा।' यह सुन कर इन्द्रजीत बोला—'अगर आपको भय लगता है तो आप घर में बैठिये। स्त्रीरत्न को पाकर कहीं छोड़ा जाता है। रावण के आगे राम बेचारा तुच्छ है।' तब विभीषण पुनः समझाते हुए बोला—'इन्द्रजीत ! ऐसा मत कहो। पाप से राजा भी रंक हो जाते हैं। तुम्हारे पिता सीता नहीं लाये, बल्कि विष लाये हैं। हनुमान आदि अनेक राजा-गण राम के पक्ष में मिल गये हैं।'

विभीषण के यह वचन सुन कर रावण क्रोध में अंधा होकर विभीषण को मारने दौड़ा, तब विभीषण भी युद्ध के लिये तैयार हो गया। तब मंत्रियों ने समझा-बुझाकर दोनों को रोका। किन्तु रावण क्रोध में भर कर बोला—'दुष्ट! तू शत्रु से मिल गया है। अतः तू इसी समय लंका से निकल जा।' विभीषण बोला—'अच्छी बात है। मैं अभी यहाँ से जाता हूँ। यदि मैंने लंका नष्ट न की तो मै रत्नश्रवा का पुत्र नहीं। इस प्रकार कह कर विभीषण तीस अक्षौहिणी सेना लेकर राम से मिलने चल दिया।

विभीषण की सेना का कोलाहल सुनकर वानरवंशी सेना भी युद्ध के लिए तैयार हो गई। राम और लक्ष्मण ने वज्रावर्त और सागरावर्त धनुष उठाये और नगर से बाहर युद्ध के लिये चल दिये। वानरवंशी सेना भी उनके पीछे चल दी। तब विभीषण ने राम के पास दूत भेजा। दूत ने आकर राम से कहा—'देव! विभीषण अपने भाई रावण से शत्रुता कर आपकी शरण में आये हैं।' राम ने यह सुनकर जांबुनद आदि मंत्रियों को बुला कर मंत्रणा की और यह निर्णय किया कि विभीषण धर्मात्मा है। रावण से सीता को लेकर उसका प्रारम्भ से ही विरोध रहा है। अतः दोनों में मतभेद और शत्रुता होना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। इसलिये विभीषण को अवश्य बुलाना चाहिये। फलतः विभीषण को भेजने के लिये दूत से कह दिया। विभीषण ने आकर राम को नमस्कार किया और बोला—'प्रभो! इस जन्म में आप और दूसरे जन्म में भगवान जिनेन्द्र मेरे शरण हैं।' राम ने बड़े प्रेम से विभीषण से कहा—'विभीषण! मैं विजय कर राक्षस द्वीप सहित लंका तुम्हें दूंगा, मेरी यह प्रतिज्ञा है।'

इधर यह बात हो रही थी, तब तक अनेक विद्याओं का अधिपति भामण्डल आ पहुँचा। उसे देखकर वानर वंशियों को बड़ी प्रसन्नता हुई। उसके साथ एक हजार अक्षौहिणी सेना थी।

अब सेना को लेकर राम ने लंका की ओर प्रयाण किया और लंका के बाहर सेना का पड़ाव डाल दिया। उसी के सामने रावण की सेना भी आ डटी। रावण की सेना में चार हजार अक्षौहिणी थी और राम की सेना में दो हजार अक्षौहिणी थी।

सबसे प्रथम रावण की ओर से हस्त और प्रहस्त नामक सुभट अपनी सेना लेकर युद्ध के लिए आये। इधर राम, लक्ष्मण और नल-नील भी आगे बढ़े। उनके पीछे उनकी सेना थी। युद्ध प्रारम्भ हो गया। रक्त की कीचड़ मच गई। हाथी, घोड़े, मनुष्य कट कट कर गिरने लगे। लाशों पर लाश पड़ने लगीं। तब नल, नील ने भयंकर युद्ध कर भिण्डमाल के प्रहार से हस्त-प्रहस्त को मार दिया।

दूसरे दिन रावण पक्ष के मारीच आदि राजा युद्ध के लिये आये। उन्होंने भयंकर युद्ध किया। वानर वंशियों में भगदड़ मच गई। तब हनुमान आगे बढ़ा। उसके प्रहार से राक्षसवंशियों की सेना तितर-बितर होने लगी। उसे रोकने के लिए राक्षसों का सेनापति माली आगे आया। हनुमान और माली का घोर युद्ध हुआ। हनुमान ने माली के हृदय पर भयानक वेग से शक्ति का प्रहार किया। वह मूर्च्छित हो गया। उसके सैनिक उसे युद्धस्थल से उठा ले गये। तब वज्रोदर माली के स्थान पर लड़ने लगा। हनुमान ने उसे अल्पकाल में ही मार डाला। फिर रावण का पुत्र जंबुमाली लड़ने आया। दोनों वीरों में बड़ी देर तक युद्ध हुआ। हनुमान ने जंबुमाली के सीने पर वज्रदण्ड का कठोर प्रहार किया, जिससे वह मूर्च्छित हो गया। उसकी सेना उसे लेकर भाग निकली। हनुमान ने भागती हुई सेना का पीछा किया और जहाँ रावण खड़ा था, वहाँ हीनिर्भय होकर युद्ध करने लगा। उसे देखकर रावण आगे बढ़ा, किन्तु उसे रोक कर अन्य योद्धा युद्ध करने लगे और हनुमान को घेर लिया। तब नल, नील, सुग्रीव, सुषेण, विराधित, प्रीतिकर, भामण्डल, समुद्र, हंस आदि राजा मिलकर राक्षस-सेना पर टूट पड़े। राक्षस घबड़ा गये। तब वीर कुम्भकर्ण लड़ने उठा। उसने वानरवंशियों को दबाना शुरू किया। तब उससे लड़ने के लिए हनुमान, अंगद, भामण्डल, शशी इन्द्र, आय। कुम्भकर्ण ने माया से सबको सुला दिया। सबके हाथ से शस्त्र गिर गये। तब सुग्रीव ने प्रबोधिनी विद्या द्वारा सबको सचेत किया। वे पुनः सचेत हो गये और उससे युद्ध करने लगे। उनके प्रहारों से कुम्भकर्ण घबड़ा गया। तब रावण स्वयं युद्ध करने आया। किन्तु इन्द्रजीत ने उसे रोक कर स्वयं युद्ध करना प्रारम्भ कर दिया। उसने बाणों की वर्षा से सबको क्षत-विक्षत कर दिया। अपनी सेना का यह विनाश देखकर सुग्रीव, भामण्डल आदि उससे युद्ध करने लगे। सुग्रीव इन्द्रजीत से भिड़ गया, भामण्डल मेघनाद से जा जूझा।

हनुमान ने कुम्भकर्ण को जा दबाया। अद्भुत युद्ध हुआ। इन्द्रजीत ने मेघ बाण छोड़ा तो भयंकर वर्षा होने लगी। सारा कटक मछली की तरह तैरने लगा। तब सुग्रीव ने पवन बाण से मेघों को छिन्न विच्छिन्न कर दिया। तब इन्द्रजीत ने अग्नि बाण छोड़ा। चारों ओर आग लग गई। उसे सुग्रीव ने मेघ बाण छोड़ कर बुझा दिया। अन्त में इन्द्रजीत ने मायामय अस्त्रों से सुग्रीव को व्याकुल कर दिया और फिर नागपाश में बाँध लिया। उधर मेघनाद ने भामण्डल को उसी शस्त्र से बाँध लिया।

यह देखकर विभीषण ने राम और लक्ष्मण से कहा—'प्रभो! देखिये, सुग्रीव और भामण्डल को नागपाश में बाँध लिया है और हनुमान को घायल कर कुम्भकर्ण ने भुजाओं में जकड़ लिया है। इनके मर जाने पर हम सबका मरण निश्चित है। आप इनकी रक्षा कीजिये। मैं तब तक इन्द्रजीत और मेघवाहन को रोकता हूं।' यह कह कर विभीषण इन्द्रजीत और मेघनाद से युद्ध करने पहुँचा। दोनों भाई अपने चाचा से संकोच के साथ युद्ध से हट गये। तब तक अंगद ने कुम्भकर्ण से हनुमान को छुड़ा लिया। सुग्रीव और भामण्डल को मरा जानकर राक्षस वापिस चले गये। तब सब लोग उनके पास आये। उस समय राम ने गरुणेन्द्र को स्मरण किया और उससे उन दोनों को जिलाने के लिये कहा। तब प्रसन्न होकर गरुणेन्द्र ने राम को हल, मूशल, छत्र, चमर, और सिंहवाहिनी विद्या दी और लक्ष्मण को गदा, खड्ग और गरुड़वाहिनी विद्या दी। दोनों भाई अन्य राजाओं के साथ सुग्रीव और भामण्डल के पास आये। गरुड़ों की हवा लगने से सर्पों के बन्धन ढीले पड़ने लगे, विष दूर हो गया और दोनों वीर मूर्च्छा से उठकर बैठ गये। सब लोग बड़े हर्षित हुए।

अगले दिन मारीच आदि सेनानायक युद्ध के लिए आगे आये और उन्होंने वानरवंशी सेना पर भारी दबाव डालना प्रारम्भ किया। उनका प्रतिरोध करने के लिये भामण्डल आगे बढ़ा। उसने राक्षस सेना को दबाया।

लक्ष्मण के शक्ति का लगना

तब रावण युद्ध के लिये स्वयं आया। उसने बाण-वर्षा करके वानर-सेना को तितर बितर कर दिया। यह देखकर विभीषण उससे युद्ध करने आ गया। उसे देखकर रावण बोला—'तू व्यर्थ में क्यों मरने आ गया। मैं तो शत्रुओं को मारने आया हूँ। अतः तू लौट जा।' तब विभीषण बोला—'तुम सीता राम को सौंप दो, अन्यथा तुम मारे जाओगे।' दोनों भाई युद्ध करने लगे। रावण ने विभीषण का छत्र उड़ा दिया। विभीषण ने उसकी ध्वजा उड़ा दी। लक्ष्मण इन्द्रजीत से और राम कुम्भकर्ण से युद्ध करने लगे।

इन्द्रजीत ने लक्ष्मण पर अन्धकार बाण छोड़ा। लक्ष्मण ने सूर्य बाण छोड़कर अन्धकार का नाश कर दिया। इन्द्रजीत ने नागबाण छोड़ा तो लक्ष्मण ने गरुड़ बाण छोड़कर नागों को भगा दिया। इसके बाद लक्ष्मण ने नागबाण छोड़ कर इन्द्रजीत को बांध लिया। इन्द्रजीत नागपाश में बंधकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। राम ने भी कुम्भकर्ण को नागपाश में बाँध लिया। राम-लक्ष्मण का संकेत पाते ही भामण्डल ने दोनों वीरों को अपने रथ में डाल लिया। विराधित ने मेघनाद को नागपाश में बाँध लिया। रावण ने विभीषण पर त्रिशूल छोड़ा, लक्ष्मण ने आकर उसे बीच में ही रोक लिया। तब रावण ने धरणेन्द्र द्वारा दी हुई शक्ति को हाथ में लेकर लक्ष्मण से कहा 'अरे बालक! तू क्यों व्यर्थ में युद्ध करने आया है। अब तू वज्र प्रहार से मेरे हाथों मारा जायगा। लक्ष्मण ने क्रोध में उत्तर दिया—अरे दुष्ट! तू परस्त्रीलम्पट है। आज तेरी मृत्यु निश्चित है।' यों कह कर दोनों महावीर परस्पर भिड़ गये। रावण ने ताक कर वह शक्ति लक्ष्मण के वक्षस्थल पर फेंक कर मारी। शक्ति लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े। तब राम रावण से युद्ध करने लगे। उन्होंने रावण को छह बार रथरहित कर दिया और बाण-वर्षा से उसे ढंक दिया। रावण व्याकुल होकर युद्ध बन्द कर लौट गया।

रावण को सन्तोष था कि चलो आज एक वीर तो मारा गया। किन्तु जब उसे कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद के समाचार मिले तो वह विलाप करने लगा। उधर सीता को लक्ष्मण के समाचार मिले तो विलाप करने लगी।

रावण के चले जाने पर राम लक्ष्मण के पास पहुँचे और उन्हें मरा हुआ जानकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। जब उन्हें होश आया तो वे विलाप करने लगे—वत्स! तू मुझे विदेश में अकेला छोड़ कर कहाँ चला गया।

अब मुझे सीता, माता और भाइयों से क्या काम है। हे विद्याधरो ! तुम शीघ्र चिता तैयार करो। मैं उसमें जलकर मर जाऊँगा, अब तुम लोग भी अपने घर वापिस जाओ और मेरे अपराध क्षमा करो। तब जांबुनद ने उन्हें समझाया—'देव ! आप व्यर्थ ही शोक क्यों करते हैं। लक्ष्मण शक्तिबाण से मूच्छित हैं। वे सुबह तक अवश्य होश में आ जायेंगे।

सब लोग लक्ष्मण को होश में लाने का उपाय करने लगे। वहाँ की युद्ध भूमि साफ करके वहीं डेरे तम्बू डाल दिये और कनात लगाकर सात दरवाजों पर सात वीर पहरा देने लगे। इतने में आकाश-मार्ग से एक मनुष्य आया और भामण्डल से बोला—'देव ! आप मुझे इसी समय राम के दर्शन करा दीजिए। मैं लक्ष्मण को जीवित करने का उपाय बताता हूँ। तब भामण्डल उसे राम के निकट ले गये। राम को नमस्कार कर वह बैठ गया। तब राम ने उसका परिचय और आने का प्रयोजन पूछा। तो उस व्यक्ति ने कहा—'देव ! मैं देवगीत नगर के राजा शशिमंडल का पुत्र शशिप्रभ हूँ। एक बार मेघ के पुत्र विजय ने मुझ पर शक्ति का प्रहार किया था। उससे मैं मूच्छित हो गया था। मैं अयोध्या के बाहर मूच्छित पड़ा हुआ था। तब अयोध्या के राजा भरत ने मेरे ऊपर जल छिड़का, उससे मैं ठीक हो गया था। एक बार अयोध्या में बीमारी फैल गई थी। तब लोगों के कहने से राजा भरत ने राजा द्रोण को बुलाया। द्रोण ने सबके ऊपर जल छिड़क दिया तो मनुष्य और पशु ठीक हो गये। तब राजा भरत ने द्रोण से उस जल के बारे में पूछा तो उसने बताया कि मेरी पुत्री विशल्या को एक दिन उसकी धाय चन्द्रावती ने स्नान कराया था। उस जल के लगते ही एक कुतिया—जो सड़ रही थी—ठीक हो गई। तबसे चन्द्रावती ने उस जल के प्रभाव से अनेक रोगियों को ठीक किया है। अतः विशल्या के जल के प्रभाव से लक्ष्मण की मूर्च्छा अवश्य दूर हो जायगी।'

तब राम ने विद्याधरों को आज्ञा दी कि तुम लोग शीघ्र जाकर विशल्या का जल ले आइये। तब उसी समय हनुमान, भामण्डल और अंगद वहाँ से विमान में चलकर अयोध्या आये और राजा भरत से मिले। हनुमान ने सीता हरण और रावण से युद्ध की बात बताई। यह सुनकर भरत को बड़ा क्रोध आया। उसने रणभेरी बजादी। भेरी का शब्द सुनकर अयोध्यावासी जाग गये और धीरे-धीरे सब लोग वहाँ एकत्रित होने लगे। शत्रुघ्न मंत्रियों सहित वहाँ पहुँचा। उससे भरत ने कहा—शत्रुघ्न युद्ध की तैयारी करो। अभी लंका पर आक्रमण करना है।' किन्तु हनुमान बोले—विद्याधरों के इस युद्ध में आपको चलने की आवश्यकता नहीं है। लक्ष्मण शक्ति-बाण के कारण मूच्छित पड़े हैं। आप तो विशल्या का स्नान-जल दे दीजिये।' भरत लक्ष्मण को मूर्च्छा की बात सुनकर रोने लगा। फिर बोला—जल से तो थोड़ा ही लाभ होगा। अच्छा यही होगा कि आप लोग विशल्या को ही अपने साथ लेते जाइये। उसके पिता द्रोण ने विशल्या का विवाह लक्ष्मण के साथ करने का निश्चय कर रखा है।' इस प्रकार कह कर भामंडल, हनुमान, अंगद और कैकेई को लेकर भरत कौतुक मंगल नगर पहुँचा और वहाँ राजा द्रोण से मिल कर सब समाचार बताये तथा उनसे विशल्या की याचना की। द्रोण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ विशल्या को उनके साथ कर दिया। वे लोग विशल्या को लेकर लंका पहुँचे और, भरत कैकेयी अयोध्या लौट गये। अयोध्यावासी राम की चिन्ता करने लगे।

हनुमान आदि ने युद्ध स्थल पर पहुँच कर राम को विशल्या के आने का वृत्तान्त बताया। सबने विशल्या का सत्कार किया। ज्यों ही विशल्या ने लक्ष्मण के ऊपर जल छिड़का तो लक्ष्मण यह कहते हुए उठ बैठे—'कहाँ गया पापी रावण। राम ने गद्गद होकर उसका आलिंगन किया और सबने लक्ष्मण को नमस्कार किया। राम की आज्ञा से कुम्भकर्ण आदि पर भी वह जल छिड़का गया, जिससे सब लोग निर्विष हो गये। घायल लोग स्वस्थ हो गये।

मारीच आदि मंत्रियों ने जब सुना कि लक्ष्मण पुनः जीवित हो उठे हैं तो उन्हें अपने पक्ष की निर्बलता का अनुभव हुआ। उन्होंने रावण से विनयपूर्वक कहा—'देव ! लक्ष्मण शक्ति से मरकर भी पुनः जीवित हो उठा है, उनके पक्ष के सभी वीर स्वस्थ हो गये हैं। जबकि कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघवाहन अभी तक शत्रु के कारागार में हैं। हमारी बहुत सी सेना मारी जा चुकी है। उधर देवर को जीवित हुआ जानकर सीता भी प्रसन्न है। वह राम के गुणों में अनुरागी है। वह आपको कभी स्वीकार नहीं करेगी। अतः इस कुल-विनाशक व्यर्थ युद्ध करने से क्या लाभ है। हमारे लिये अब उचित यही होगा कि सीता राम को वापिस दे दें और उनसे सन्धि कर लें।'

रावण द्वारा बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करना

रावण ने कहा—'अच्छी बात है।' उसने एक दूत को समझा बुझा कर राम के पास भेजा। दूत ने जाकर राम को नमस्कार किया और कहने लगा—'महाराज! त्रिखण्डाधिपति रावण ने यह कहा है कि आप मेरे भाई और पुत्रों को छोड़ दें तथा मुझसे सन्धि कर लें। आप सीता की याद भूल जायँ। उसके बदले में आपको तीन सौ कन्यायें और आधा राज्य दे दूंगा।' रामचन्द्रजी यह सुनकर बोले— भाई! मुझे अन्य स्त्रियों से कोई प्रयोजन नहीं है। तुम रावण से कह देना कि वह मुझे मेरी सीता वापिस कर दे, मैं उसके भाई और पुत्रों को वापिस कर दूंगा।' फिर भी दूत बोला—'देव! आप समझदार हैं। आप त्रिखंडी राजा रावण के साथ दुराग्रह न करें। आपके पक्ष के बहुत से राजा उनके हाथ से मारे जा चुके हैं, आप भी उसी प्रकार व्यर्थ मारे जायेंगे।' दूत के ये उद्दण्ड वचन सुनकर भामण्डल को भारी क्रोध आया और उसने दूत को अपमानित करके निकाल दिया।

दूत ने जाकर रावण को सारी बातें बताईं। रावण सोचने लगा— यदि मैं युद्ध में वानरों को जीतकर भाई और पुत्रों को छुड़ाने का प्रयत्न करूँ तो वे उन्हें पहले ही मार डालेंगे। यदि मैं गुप्त रूप से जाकर रात में उन्हें छुड़ाता हूँ तो मेरी अपकीर्ति होगी। अतः उचित होगा कि मैं पहले बहुरूपिणी विद्या सिद्ध करूँ। उसके सिद्ध हो जाने पर सब काम सिद्ध हो जायेंगे।' यों निश्चय करके उसने मंत्रियों को आदेश दिया कि मैं जब तक विद्या सिद्ध करता हूँ, तब तक भरत क्षेत्र के सभी मंदिरों में तीनों काल पूजन, कीर्तन, सामायिक होनी चाहिये, लंका में हिंसा बन्द रहे, युद्ध बन्द रहे। मेरी सेवा में केवल मन्दोदरी आदि रानियाँ रहेंगीं।' इस प्रकार आदेश देकर वह शांतिनाथ जिनालय में फाल्गुन शुक्ला अष्टमी को शुद्ध वस्त्र पहन कर और सामग्री लेकर जा बैठा और नियम कर लिया कि जब तक कामरूपिणी विद्या सिद्ध न हो जायगी, तब तक के लिए उपवास है। इस प्रकार नियम करके वह ध्यान लगाकर बैठ गया।

जब विभीषण को यह ज्ञात हुआ तो उसने वानरवंशियों को एकत्र कर कहा—'रावण विद्या सिद्ध कर रहा है। यदि उसे वह विद्या सिद्ध हो गई तो हमारा जीतना कठिन हो जायगा। अतः उसकी विद्या-सिद्धि में विघ्न डालना चाहिये।' यह सुनकर अनेक विद्याधर लंका में जा पहुँचे। उन्होंने नगर को लूटना, नष्ट करना प्रारम्भ कर दिया। अनेक लंकावासियों को मार दिया। नगर में त्राहि त्राहि मच गई। उन्होंने राजमहल में भी जाकर बड़े उत्पात किये। यह देखकर भय नामक दैत्य विद्याधरों से लड़ने को तैयार हुआ, किन्तु मन्दोदरी ने उसे रोक दिया कि महाराज रावण की ऐसी आज्ञा नहीं है। तब वानरवंशी शान्तिनाथ जिनालय जा पहुँचे। वहाँ जाकर उन्होंने भगवान के दर्शन किये। उसके पश्चात् वे वहाँ पहुंचे जहाँ रावण बैठा हुआ था। वहाँ जाकर उन्होंने रावण के समक्ष ही रावण की रानियों की दुर्दशा करना प्रारम्भ कर दिया। किन्तु रावण अविचल भाव से विद्या-साधन करता रहा। अन्त में उसे वह विद्या सिद्ध हो गई। विद्या सिद्ध कर रावण भगवान शान्तिनाथ को नमस्कार कर सिंह की तरह उठा। उसे उठते देखकर सब वानर सेना वहाँ से भाग खड़ी हुई। रानियों ने रावण से शिकायत की कि इन वानरों ने हमारी बड़ी दुर्गति की है। रावण बोला—'अब सब वानरवंशी सेना मेरे हाथों से मारी जायगी। तुम लोग निश्चिंत रहो।' यह कह कर वह प्रासाद में पहुँचा और वहाँ स्नान कर पुनः जिनालय में गया। वहाँ उसने भगवान की पूजा की। फिर भोजन आदि से निवृत्त होकर मण्डप में आया और विद्या की परीक्षा की, इसके अनेक रूप बनते गये। अब सबको विश्वास हो गया कि रावण अवश्य विजयी होगा।

इसके पश्चात् रावण शृंगार करके सीता के पास पहुँचा। उस समय एक दासी सीता को रावण की बहुरूपिणी विद्या की सिद्धि की प्रशंसा कर रही थी। तभी रावण वहाँ पहुँचा और बोला —'देवी! मुझे बहुरूपिणी विद्या सिद्ध हो गई है। मैंने भगवान अनन्तवीर्य के समक्ष प्रतिज्ञा की थी कि जो स्त्री मुझे नहीं चाहेगी, उसके साथ मैं बलात्कार नहीं करूँगा। अतः मैंने तुझे आज तक स्पर्श नहीं किया। अब मैं तेरे राम और लक्ष्मण को इस विद्या के बल से निष्प्राण करूंगा। फिर तू मेरे साथ पुष्पक विमान में विहार करना और जीवन के आनन्द उठाना। तब सीता रावण को धिक्कारती हुई कहने लगी—'हे दशानन! तुम उच्च कुल में पैदा होकर ऐसे अधम विचार करते हो, तुम्हें धिक्कार है। मैं तुमसे एक बात कहती हूँ। जब तुम्हें मेरे राम मिलें तो उनसे कहना कि सीता के प्राण केवल तुम्हारे दर्शन के लिए अटके हुए हैं।' यों कह कर सीता मूर्छित हो गई।

यह देखकर रावण को पश्चात्ताप हुआ और वह मन में अपने को धिक्कारता हुआ कहने लगा—मुझ पापी ने व्यर्थ ही इस शीलशिरोमणि सीता का अपहरण करके लोकनिंद्य काम किया और अपने पवित्र वंश में अकीर्ति-कालिमा लगाई। मैंने अपने बुद्धिमान भाई विभीषण की बात नहीं मानी। यदि उसकी बात मान कर मैं सीता को वापिस कर देता तो लोक में मेरी प्रशंसा होती। किन्तु अब तो वह अवसर जाता रहा। यदि इस समय मैं सीता को वापिस करूंगा तो लोग मुझे कायर कहेंगे। अब तो मेरे लिए एक ही मार्ग है। मैं युद्ध करूं और राम लक्ष्मण को जीवित पकड़ कर सीता के निकट लाऊं और उन्हें सीता को सौंप कर वस्त्राभूषण से उनका सम्मान करूं। इससे लोक में मेरी प्रशंसा होगी तथा मैं पाप से भी बच जाऊंगा। किन्तु इन वानरवंशी विद्याधरों को नहीं छोड़ूंगा। उस अंगद का तो मैं अवश्य वध करूंगा, जिसने मेरी रानियों का अपमान किया है और वह सुग्रीव, भामण्डल, हनुमान इनको भी मारूंगा। इन्होंने मुझसे विद्रोह किया है।

इस प्रकार विचार कर वह वापिस महलों में पहुँचा। तभी अनेक प्रकार के अपशकुन होने आरम्भ हो गए— आसन हिलने लगा, दसों दिशायें कषायमान होने लगीं, उल्कापात हुआ, गीदड़ियाँ रुदन करने लगीं। यक्षों की मूर्ति से अश्रुपात होने लगे। रुधिर की भी वर्षा हुई। और भी इसी प्रकार के अनेक अपशकुन हुए।

रावण की मृत्यु

प्रातःकाल होने पर रावण राज दरबार में गया। अनेक वीर राजा भी बैठे हुए थे। किन्तु वहाँ कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद को न देखकर रावण बड़ा दुःखी हो गया। उसका मुख-कमल मुर्झा गया। फिर उसे क्रोध आया, नेत्र लाल हो गए, नथुने फड़कने लगे। वह वहाँ से उठ कर अपनी आयुधशाला में गया। उसी समय पूर्व दिशा में छींक हुई, आगे बढ़ा तो भयंकर कालनाग मार्ग रोके खड़ा दिखाई दिया। हवा से छत्र का वैडूर्यमणि का दण्ड भग्न हो गया और उत्तरासन गिर पड़ा। दाहिने हाथ पर कौआ बोला। इन अपशकुनों से सबको अनिष्ट की आशंका हो गई। तब मन्दोदरी ने चिन्तित होकर मंत्रियों से कहा—तुम लोग महाराज के हित की बात उनसे स्पष्ट क्यों नहीं कहते। कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत और मेघनाद बन्धन में पड़े हुए हैं। तुम उन्हें युद्ध से रोको।' तब मन्त्री बोले- 'स्वामिनी! हमने सब प्रयत्न करके देख लिए। किन्तु महाराज हमारी एक नहीं सुनते। शायद आपकी बात मान लें।' तब मन्दोदरी रावण के पास पहुँची और बड़ी विनय से बोली—नाथ! युद्ध में जाते समय अनेक अपशकुन हो रहे हैं। अतः आप युद्ध का विचार छोड़ दीजिये और सीता राम को देकर शान्ति के साथ रहिए। साथ ही राम से कह कर कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद आदि को बन्धन से छुड़ाइये। राम और लक्ष्मण बलभद्र नारायण के रूप में पैदा हुए हैं और आप प्रतिनारायण हैं। मन्दोदरी की बातें सुनकर रावण को क्रोध आ गया। बोला —तुम क्यों डरती हो। उन भिखारियों को बलभद्र-नारायण बता रही हो। वे तो पेट भरने के लिए फिर रहे हैं। तुम कैसी क्षत्रिय कन्या हो, जो मृत्यु से डरती हो।'

युद्ध के लिये चलते समय रावण ने अपने कुटुम्बी जनों से क्षमा माँगी तथा अपनी रानियों से भी कहा— 'देवियो! मैं युद्ध के लिये जा रहा हूँ। पता नहीं फिर आप मिलें या नहीं। मैंने हँसी में या क्रोध में यदि कोई अपशब्द कह दिया हो, तो उसे मेरा प्रेमोपहार समझना।' रावण ने पुनः पुनः सबका प्रेमालिंगन किया। फिर रण-भेरी बजवाई। रणभेरी की आवाज सुनते ही सब भट अपने परिवार से विदा होकर रावण के पास आ गये। रावण ने बहुरूपिणी विद्या के द्वारा इक्कीस खण्ड का एक रथ बनाया। उसमें एक हजार हाथी जुते हुए थे। वह उस रथ में मय, मारीच, सार, सुक आदि मन्त्रियों के साथ बैठकर चला। उसके पीछे अगणित योद्धा विविध शस्त्रास्त्र लेकर विविध वाहनों में चल रहे थे। चलते समय बुरी बोली अग्नि, कीचड़ में सना हुआ तेल का बर्तन, बिखरे हुए बालों वाले मनुष्य इत्यादि अनेक शोकसूचक अपशकुन हुए। इन्हें देखकर भी वह अभिमानी लौटा नहीं।

शत्रु सैन्य को देखकर राम भी सिंहरथ में आरूढ़ होकर चल दिये। उसके पीछे लक्ष्मण, भामण्डल, नल, नील, सुग्रीव, हनुमान आदि भी चले। रावण को हजार हाथियों वाले रथ पर आता देख कर लक्ष्मण भी गरुड़ी रथ पर शस्त्रास्त्रों से सजकर बैठ चले। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध छिड़ गया। मारीच आदि राक्षसों द्वारा वानर सेना का विनाश होता हुआ देखकर हनुमान और नील राक्षसों पर झपटे। तब मय दैत्य हनुमान के सामने आया। हनुमान ने उसे छह बार रथरहित कर दिया। तब रावण ने अपनी विद्या द्वारा रथ बना कर मय को दिया।

मय ने तब हनुमान का रथ तोड़ दिया। इसके बाद भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण मय से लड़ने आये। मय ने अपने बाणों से सबको व्याकुल कर दिया। तब राम युद्ध में कूद पड़े। दोनों में घोर युद्ध हुआ। आकाश बाणों से आच्छादित हो गया। असंख्य योद्धा कट-कट कर मरने लगे। हाथी और घोड़ों की चीत्कारों से कान के पर्दे फटने लगे। लाशों के अम्बार लग गये। मय ने अनेक मायामयी बाण राम के ऊपर चलाये, किन्तु राम ने उन सबको बीच में ही प्रभावहीन कर दिया। उल्टे राम ने मय को अपने बाणों से जर्जरित कर दिया। मय की यह दशा देखकर रावण युद्ध करने आया। उसे ललकारते हुए लक्ष्मण ने कहा—'अरे पापी! तू प्राण लेकर मेरे आगे से कहाँ जाता है। आज धर्मबुद्धि रामचन्द्रजी ने मुझे आज्ञा दी है कि तुझ परस्त्री चोर का आज शिरच्छेद कर दूं। रावण बोला—'अरे! क्यों व्यर्थ बकवास कर रहा है। सिंह के आगे कुत्ते का इतना साहस।' यों कहकर रावण ने लक्ष्मण को बाणों से ढक दिया। बदले में लक्ष्मण ने भी बाणों से रावण को व्याकुल कर दिया। तब रावण मायामयी शस्त्रों से युद्ध करने लगा। लक्ष्मण ने उसका उसी प्रकार उत्तर दिया। दोनों ओर से जलबाण, पवनबाण, अग्निबाण, नागबाण, गरुणास्त्र, अन्धकार-बाण, प्रकाशबाण, निद्राबाण, प्रबोधबाण आदि मायामय अस्त्रों से बड़ी देर तक युद्ध होता रहा।

इसी समय आकाश में आठ विद्याधर कुमारियाँ आईं। वे लक्ष्मण की मंगल-कामना करने लगीं। जब लक्ष्मण ने ऊपर की ओर देखा तो उन कुमारियों ने लक्ष्मण को सिद्धार्थ नामक महाविद्या दी। लक्ष्मण ने इससे रावण की सम्पूर्ण विद्याओं का प्रभाव नष्ट कर दिया। अब रावण बहुरूपिणी विद्या द्वारा अनेक रूप बनाकर युद्ध करने लगा। लक्ष्मण उसका एक सिर काटते, उसको जगह सौ सिर बन जाते। रावण अनेक सिर और भुजायें बनाता और लक्ष्मण उन्हें काटता जाता। इस प्रकार दोनों में ग्यारह दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। लक्ष्मण के बाणों से बहुरूपिणी विद्या का शरीर भी जर्जर हो गया। अतः वह भी रावण के शरीर से निकल भागी। विद्या के निकल जाने पर रावण अपने असली रूप में आ गया। तब उसने अत्यन्त क्रुद्ध होकर हजार आरों वाले चक्ररत्न को स्मरण किया। स्मरण करते ही सुदर्शनचक्र उसके हाथ में आ गया। तब रावण लक्ष्मण से बोला—'अब भी तू आकर मुझे नमस्कार कर, अन्यथा मारा जायेगा।' लक्ष्मण हंसकर बोला—इस कुम्हार के चाक पर तुझे इतना अभिमान है!' यह सुनते ही रावण ने चक्ररत्न की पूजा कर उसे लक्ष्मण पर फेंका। इसी बीच राम ने मय को बांध कर रथ में डाल लिया और वे लक्ष्मण की ओर आये। सबने आग की ज्वालाओं के समान आते हुए चक्र को देखा। लक्ष्मण ने वज्रमयी बाणों से चक्र को रोकने का प्रयत्न किया, राम वज्रावर्त धनुष और हल लेकर, सुग्रीव गदा से, भामण्डल तलवार से, विभीषण त्रिशूल से, हनुमान मुद्गर से, नील वज्रदण्ड लेकर और अंग अंगद कुठार लेकर उसे रोकने लगे। किन्तु वह देवाधिष्ठित चक्र किसी के रोके न रुका। वह आया और लक्ष्मण की तीन प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मण की अंगुली पर ठहर गया।

लक्ष्मण की अंगुली पर टिके हुए चक्ररत्न को देखकर वानरवंशी विद्याधर हर्ष से नाचने लगे और कहने लगे—वास्तव में ही ये दोनों भाई बलभद्र और नारायण हैं। रावण चक्र को लक्ष्मण के पास देखकर मन में कहने लगा—इस क्षणस्थायी लक्ष्मी को धिक्कार है। वे भरत आदि महापुरुष धन्य हैं, जो इस लक्ष्मी को त्याग कर मोक्ष को प्राप्त हुए। मैं जीवन भर विषयों में ही लिप्त रहा। रावण यह सोच ही रहा था कि लक्ष्मण ने गरज कर रावण से कहा—'रावण! तू समझदार है। अब भी सीता राम को सौंप दे। सीता राम को देकर उनके चरणों में प्रणाम कर और आनन्दपूर्वक राज्य कर।' यह सुनकर रावण क्रोध से बोला—'यह चक्र चला गया तो क्या हुआ, अभी मेरी शक्ति सुरक्षित है। देखता क्या है, चक्र चला।' रावण की यह दर्पोक्ति सुनकर लक्ष्मण ने बड़े जोर से घुमाकर चक्र रावण को मारा। रावण ने उसे रोकने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु अब उसका पुण्य क्षीण हो गया था। चक्र ने रावण के वक्षस्थल को चीर डाला। हृदय के भिदते ही रावण पृथ्वी पर गिर पड़ा। रावण के मरते ही उसकी सेना भाग खड़ी हुई। उसे भागते देखकर हनुमान ने अभयघोषणा करते हुए कहा—आप लोग डरें नहीं, राम की आज्ञा शिरोधार्य कर सुख से रहें।

रावण को मरा हुआ देखकर विभीषण आत्महत्या के लिए तैयार हो गया, किन्तु राम ने उसे रोका। वह मूर्छित हो गया। होश में आने पर वह रावण की लाश के पास बैठकर विलाप करने लगा। जब यह समाचार लंका में

पहुँचा तो मंदोदरी आदि रानियाँ आकर वहाँ विलाप करने लगीं, वे अपना सिर धुनने लगीं, कोई छाती कूटने लगी। उसकी लाश के चारों ओर बैठकर उसकी अठारह हजार रानियाँ रावण का सिर गोद में रखकर जोर-जोर से विलाप करने लगीं। तब राम, लक्ष्मण आदि वहाँ आये और विभीषणादि को देखकर कहने लगे—रावण धन्य है जो युद्ध में वीरतापूर्वक मारा गया। इसमें शोक मनाने की क्या आवश्यकता है।' फिर राम ने मन्दोदरी आदि रानियों को भी समझाया। बाद में वानरवंशियों और राक्षस-वंशियों ने मिलकर पद्म सरोवर के तट पर चंदन कपूर आदि से चिता बनाई और रावण का दाह-संस्कार किया। फिर राम की आज्ञा से कुम्भकर्ण, इन्द्रजीत, मेघनाद, मय आदि को सुभट बन्धनों में बाँधकर लाये। राम ने उन्हें बन्धनमुक्त करते हुए कहा—'अब आप लोग स्वतन्त्र हैं, प्रसन्नतापूर्वक अपना राज्य संभालें। मैं तो सीता को लेकर यहाँ से चला जाऊँगा।' तब उन सबने उत्तर दिया—'अब हमें इस राज्य से कोई प्रयोजन नहीं है।' राम बोले—'आप धन्य हैं, जो आत्म-कल्याण का आपने विचार किया।

उसी दिन कुसुम नामक वन में मुनिराज को केवलज्ञान हुआ। देवों ने उनका ज्ञान महोत्सव मनाया। यह सुनकर वानरवंशियों और राक्षसवंशियों के साथ राम समवसरण में पहुँचे और केवली भगवान की स्तुति, वन्दना और पूजा कर समवसरण में बैठ गये। भगवान का उपदेश हुआ। भगवान का उपदेश सुनकर इन्द्रजीत, मेघनाद, कुम्भकर्ण आदि ने मुनिदीक्षा लेली तथा मन्दोदरी आदि रानियाँ आर्यिका बन गईं। इन्द्रजीत, और मेघवाहन तपस्या करके चूलगिरि (बड़वानी) से मुक्त हुए। रेवा नदी के किनारे विंध्य पर्वत पर इंद्रजीत के साथ मेघवाहन मुनि ने तपस्या की थी। अतः वह सिद्धतीर्थ कहलाने लगा। कुम्भकर्ण रेवा के किनारे मुक्त हुए।

राम का लंका में प्रवेश और अयोध्या-गमन

श्री रामचन्द्र जी ने त्रैलोक्य अम्बर हाथी पर आरूढ़ होकर विद्याधरों के साथ गाजे बाजे के साथ लंका में प्रवेश किया। लंका की विशेष शोभा की गई थी। रामचन्द्र जी राजमार्ग पर होकर निकले। वे अशोक उद्यान में पहुँचे, जहाँ सीता दासियों के बीच में बैठी हुई थी। राम को देखकर सीता बड़ी पुलक के साथ उठी। राम धूलधूसरित सीता को देखकर हाथी से उतर पड़े। सीता ने आगे बढ़कर राम के पैर छुए, राम ने बड़े हर्ष से उसे छाती से लगा लिया। फिर सीता राम के आगे हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। तभी लक्ष्मण ने आगे बढ़कर सीता को प्रणाम किया। सीता ने उसे आशीर्वाद दिया। इसके बाद भामण्डल ने सीता को सब विद्याधरों का परिचय कराया। सीता ने सबको आशीर्वाद दिया। उसके बाद रामचन्द्र जी सीता के साथ हाथी पर सवार होकर तथा अन्य विद्याधर अपनी-अपनी सवारियों पर आरूढ़ होकर रावण के स्वर्ण प्रासाद में आये। वहाँ शान्तिनाथ जिनालय को देखकर सब लोग उतर पड़े और सबने भगवान के दर्शन किये। फिर पूजन किया। रामचन्द्र जी ने वीणा बजाई, सीता नृत्य करने लगी। वहाँ से सब लोग सभा मण्डप में आये। विभीषण महल में जाकर सुमाली, माल्यवान, रत्नश्रवा आदि को राम के पास ले आया। राम ने सबको बराबर आसन पर बैठाकर सबका समुचित सम्मान किया और सान्त्वना दी। फिर विभीषण ने राम को भोजन का निमन्त्रण दिया। सब लोग उठकर विभीषण के महलों में भोजन के लिए गये। राम, सीता आदि को तैलादि मर्दन कर स्नान कराया, सुन्दर वस्त्राभूषण धारण कराये और स्वादिष्ट भोजन कराया। फिर सबको यथायोग्य स्थानों पर ठहराया। राम सीता के साथ तथा लक्ष्मण विशल्या के साथ सुन्दर प्रासादों में ठहरे।

एक दिन विद्याधरों ने तीन खण्ड के राजसिंहासन पर राम-लक्ष्मण का अभिषेक करने की अनुमति माँगी। किन्तु राम ने कहा—हमारे पिता ने राजसिंहासन हमारे भाई भरत को दिया है, अतः राजा वही है। हम उन्हीं की आज्ञा का पालन करेंगे। वे ही हम सबके मालिक हैं। फिर भी विद्याधरों ने 'त्रिखण्डाधिपति राम-लक्ष्मण की जय' बोलकर उनके ऊपर छत्र लगा दिया। राम-लक्ष्मण दोनों भाई छह वर्ष तक लंका में रहे।

एक दिन नारद अयोध्या गये। वहाँ अपराजिता (कौशल्या) से उन्हें राम का निर्वासन, राम-रावणयुद्ध आदि के बारे में समाचार ज्ञात हुए। वे तेतीस वर्ष बाद इधर आये थे। अतः उन्हें इधर के कोई समाचार ज्ञात नहीं थे। रानी नारद को समाचार सुनाते सुनाते फूट-फूट कर रोने लगी। नारद को रानी के इस दुःख से बड़ा दुःख

हुआ। वे बोले—माता ! शोक मत करो। मैं जाकर राम के कुशल समाचार लाता हूँ। यह कहकर नारद लंका पहुँचे और राम से मिलकर उन्हें बताया कि आपकी माता आप लोगों के वियोग से बहुत दुखी है। आप यहाँ सुख में ऐसे मग्न हैं कि आपने उनकी बात तक भुलादी है। वे आप लोगों के दुःख से प्राण त्याग देंगीं। यह सुनकर रामचन्द्र जी बड़े व्याकुल हुए। उन्होंने उसी समय विभीषण को बुलाया और कहा-तुम्हारे यहाँ हम लोग इतने दिन बड़े सुख से रहे। अब हमारी इच्छा अयोध्या जाने की है। आप सवारियों का प्रबन्ध कर दीजिये।' विभीषण ने राम से सोलह दिन और ठहरने का आग्रह किया। राम ने यह स्वीकार कर लिया। विभीषण ने शीघ्र ही एक दूत अयोध्या को भेजा और भरत को समाचार दिया कि रामचन्द्र जी १६ दिन बाद लंका से अयोध्या को प्रस्थान करेंगे। यह सुनकर भरत आदि को बड़ी प्रसन्नता हुई। फिर विभीषण ने बहुत से राक्षस विद्याधरों को अयोध्या की सजावट करने के लिए भेजा।

राम लक्ष्मण ने सोलह दिन बाद अनेक विद्याधरों के साथ गाजे बाजे के साथ लंका से प्रस्थान किया। राम सीता के साथ पुष्पक विमान में बैठे। लक्ष्मण, हनुमान आदि अन्य सवारियों में बैठे। मार्ग में राम सीता को सारे स्थान बताते जाते थे। दण्डक वन, वन्शगिरि, क्षेमनगर, बालखिल्य नगर, उज्जयिनी, चित्रकूट सभी प्रवास-स्थानों को उन्होंने बताया। इस तरह वे अयोध्या के बाहर आ पहुँचे। भरत भी शत्रुघ्न के साथ सेना लेकर राम की अगवानी को आया। भरत को देखकर राम आदि सभी विमान से उतरे। राम-भरत-लक्ष्मण और शत्रुघ्न परस्पर गले मिले और दोनों भाईयों ने सीता को प्रणाम किया। फिर सब अयोध्या की ओर चल दिये। मार्ग जन संकुल था। हर्ष से अयोध्या झूम उठा। सड़कें और गलियाँ नया शृंगार करके अपने बिछुड़े राम का स्वागत करने को मचल रही थीं। सारा नगर सुसज्जित किया गया था। सड़कों पर गुलाबजल का छिड़काव किया गया था। तोरण और बन्दनवारों से अयोध्या पटी पड़ी थी। आज उसके नाथ जो आये थे। बन्दीजन विरुदावलियाँ गाते जा रहे थे, नर्तकियाँ नृत्य कर रही थीं। अपूर्व शोभा थी अयोध्या की।

चारों भाई सीता को बीच में करके राजद्वार पर पहुँचे। मातायें बाहर दरवाजे पर आ गईं। दोनों भाइयों ने माताओं के चरण छुए। माताओं ने उन्हें हृदय से लगा लिया और आनन्दाश्रु बहाने लगीं। उसके पश्चात् सीता, विशल्या आदि ने सासुओं के पैर छुए। माताओं ने सबको आशीर्वाद दिया। सब लोग राजमहल में गये।

रावण को विजय करने पर बलभद्र राम और नारायण लक्ष्मण स्वयमेव तीन खण्ड के अधिपति बन गये। उनके वैभव का वर्णन क्या किया जा सकता है। उनके पास ४२ लाख हाथी, ४२ लाख रथ, ६ करोड़ प्यादे, और तीन खण्ड के देव और विद्याधर उनके सेवक थे। राम के पास चार रत्न थे—हल, मूशल, रत्नमाला और गदा। लक्ष्मण के पास सात रत्न थे—शंख, चक्र, गदा, खड्ग, दण्ड, नागशय्या और कौस्तुभ मणि। उनका घर इन्द्र के आवास जैसा लक्ष्मी का आगार था। ऊँचे दरवाजों वाला चतुःशाल कोट था। उनकी सभा का नाम वैजयन्ती था। प्रासाद कूट नामक उनका महल था। वर्ध नाम का नृत्य घर था। शीत ऋतु का महल कुक्कड़े के अण्डे जैसा था। ग्रीष्म ऋतु का धारा मण्डप गृह था। उनके सोने की शैय्या में सिंह के आकार के पाये थे। वह पद्मरागमणि की थी। अम्भोदकाण्ड नामक वर्षा ऋतु का महल था। सिंहासन उगते सूर्य के समान था, चन्द्रमा के समान उज्वल उनके चमर और छत्र थे। अमूल्य वस्त्र और दिव्य आभरण थे। उनका कवच अभेद्य था। मनोहर मणियों के कुण्डल थे। अमोघ गदा, खड्ग, स्वर्णबाण थे। ५० लाख हल, एक करोड़ से अधिक गाय, और अक्षय भण्डार था। मनोहर उद्यान थे, जिनमें रत्नमई सीढ़ियों वाली बावड़ी बनी हुई थी। उनके राज्य में सारी प्रजा पूर्ण सुखी थी। किसानों के पास गाय भैंस और बैलों की अधिकता थी। राम के आठ हजार रानियाँ थीं तथा लक्ष्मण के सोलह हजार रानियाँ थीं। राम ने भगवान के हजारों जिनालय बनवाये। लोग सदा धर्म-कथा किया करते थे। राम के पधारने से अयोध्या की शोभा असंख्य गुनी बढ़ गई। जन-जन में राम के यश का वर्णन होता रहता था। किन्तु कुछ दुष्ट लोग सीता के सम्बन्ध में कभी कभी बुरी चर्चा किया करते थे कि रावण सीता को हर लेगया था और वह उसके घर में भी रही थी। फिर भी इतने विवेकी और न्यायवान होते हुए भी राम सीता को अपने घर ले आये।

बलभद्र-नारायण की विभूति

भरत के मन में तो प्रारम्भ से ही राजपाट और गृहस्थी की ओर से विरक्ति थी। उनका मन विषय वासनाओं की ओर जाता ही नहीं था। जब राम अयोध्या लौटे नहीं थे, तब तक तो उन पर राज्य का भार था। अतः वे चाहते हुए भी मुनि-दीक्षा नहीं ले सके। किन्तु राम के वापिस आने पर उन्होंने मुनि बनने की मन में ठानली। एक दिन उन्होंने रामचन्द्र जी से अपने मन की बात कही और उनसे आज्ञा माँगी। यह जानकर माता कैकेयी विलाप करने लगी। राम और लक्ष्मण ने उसे समझाया—भैया! अभी तुम्हारी आयु मुनि के कठोर व्रत पालने की नहीं है। अतः तुम घर में रहकर राज्य शासन करो और धर्म का पालन करो। भरत उनकी आज्ञा उल्लंघन नहीं कर सके। किन्तु फिर भी घर में रह कर मुनियों के उपयुक्त व्रतों का पालन करने लगे। एक दिन सीता, विशल्या, उर्वशी, कल्याणमाला, जितपद्मा, वसुन्धरा आदि दोनों भाइयों की रानियाँ भरत का मन विराग से हटाने के उद्देश्य से भरत के पास आकर बड़े प्रेम से बोलीं—देवर! चलो, हम सब मिल कर जलक्रीड़ा करें। भरत उनके प्यार भरे आग्रह को टाल न सके और न चाहते हुए भी वे उनके साथ चल दिये। सबने सरोवर पर जाकर जल क्रीड़ा की। परस्पर विनोद करते हुए सबने जल में स्नान किया। पश्चात् भरत उठकर निकट के चैत्यालय में जाकर भगवान की पूजा करने लगे। स्त्रियों में से कोई वीणा बजाने लगी, कोई नृत्य करने लगी।

भरत घर में वैरागी

इतने में त्रैलोक्य मण्डन हाथी बन्धन तुड़ाकर इधर-उधर भागने लगा। चिंघाड़ता हुआ वह अनेक बाग बगीचों को उजाड़ने लगा, उसने अनेक घर ढा दिये। उसकी चिंघाड़ सुनकर अनेक हाथी भी बन्धन तुड़ाकर भागने लगे। घोड़े हिनहिनाने लगे। सारी अयोध्या में आतंक छा गया। राम-लक्ष्मण, हनुमान आदि सभी हाथी को पकड़ने आये, किन्तु वह किसी के वश में नहीं आया। वह काल के समान सीधा उस सरोवर की ओर भागा, जहाँ रानियाँ जल-क्रीड़ा कर रही थीं। हाथी को आता हुआ देख कर रानियाँ भय के मारे भरत के पीछे छिप गईं। हाथी को भरत की ओर जाते देख कर सब हाहाकार करने लगे। किन्तु भरत को देखते ही हाथी को अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो आया और सूँड नीची करके शान्त भाव से खड़ा हो गया। भरत ने बड़े प्रेम से उससे कहा—'गजेन्द्र! तुम इस प्रकार क्रुद्ध कैसे हो गये? भरत का प्रश्न सुनकर हाथी रोने लगा। सबको बड़ा आश्चर्य हुआ।

भरत सीता और विशल्या के साथ उसी हाथी पर बैठ कर घर आया। भोजन आदि से निवृत्त होने पर राज सभा में उसी हाथी की चर्चा थी। इतना क्रुद्ध होने पर भी यकायक भरत को देखकर वह शान्त कैसे हो गया तथा खुशामद करने पर भी चार दिन से आहार क्यों नहीं ले रहा।

उसी समय अयोध्या के बाहर उद्यान में देशभूषण-कुलभूषण केवली भगवान का आगमन हुआ। समवसरण की रचना देख कर वनमाली ने उनके आगमन की सूचना राम को दी। यह समाचार सुन कर राम ने अपने आभूषण उतार कर माली को दे दिये और नगर में डुगडुगी पिटवा कर राम लक्ष्मण आदि के साथ केवली भगवान के दर्शनों को गये। साथ में सभी विद्याधर, राज परिवार, पुरजन थे। सबने वहाँ पहुँच कर भगवान की वन्दना-पूजा की और भगवान का उपदेश सुना। भगवान से हाथी के सम्बन्ध में प्रश्न करने पर भगवान ने बताया कि भरत और इस हाथी के जीव इस जन्म से पहले ब्रह्मोत्तर स्वर्ग में देव थे। अभिराम का जीव तो स्वर्ग से चलकर यह भरत हुआ है तथा मृदुमति का जीव मायाचारपूर्वक तप करने के कारण स्वर्ग से चलकर यह हाथी हुआ है। भरत को देखने से उसे पूर्व जन्म का स्मरण हो आया, इसलिए वह शान्त हो गया।

अपने जन्मान्तर का हाल जानकर भरत ने केवली भगवान से दीक्षा देने की प्रार्थना की। तो राम कातर होकर कहने लगे—'भाई! पिता ने तुम्हें राज्य दिया था। अब इसे किसे दोगे। हमने तो तुम्हारे लिए ही विजय की है। यह चक्ररत्न भी तुम्हारा ही है। तुम इसे सम्भालो। यदि तुम हमसे विरक्त हो तो हम बाहर चले जायेंगे। पिता गये, अब तुम भी चले जाओगे। पति और पुत्र के वियोग में माता कैकेई रो रोकर जान दे देगी।' तब भरत बोले—'अब तक तो पिता की आज्ञा से मैंने राज्य किया। अब तुम करना।' यह कहकर भरत ने मुनिदीक्षा लेली। उसके साथ कैकेयी आदि ने भी आर्यिका दीक्षा ग्रहण करली। हाथी ने श्रावक के व्रत ले लिए और चार वर्ष तक घोर तपश्चरण कर वह छठे स्वर्ग में देव हुआ। भरत भी तपस्या करके कर्मों का नाश कर मुक्त हो गये।

राम-लक्ष्मण का राज्याभिषेक—भरत के दीक्षा लेने पर लक्ष्मण को बड़ा शोक हुआ। वह भरत के गुणों का बार-बार बखान करता। राम भी भरत के गुणों की चर्चा करते रहे। सारे नगर में भरत की ही प्रशंसा के गीत गाये जाने लगे। घर-घर उन्हीं की चर्चा थी।

अगले दिन सब राजा मिलकर राम के पास आए और हाथ जोड़कर निवेदन करने लगे देव! हम सब भूमिगोचरी और विद्याधर राजा आपसे एक निवेदन करने आये हैं। हम सब आपका राज्याभिषेक करना चाहते हैं।' राम यह सुनकर बोले—'तुम सब लक्ष्मण का राज्याभिषेक करो। वह नारायण है। वह सदा मेरे चरणों में नमस्कार करता है। फिर मुझे राज्य की क्या आवश्यकता है।' सब राजा तब लक्ष्मण के पास गये और उनसे राम का सन्देश कह कर राज्याभिषेक की अनुमति मांगने लगे। लक्ष्मण सबको अपने साथ लेकर राम के पास आए और बोले—'देव! इस राज्य के स्वामी तो आप ही हैं। मैं तो आपका सेवक हूं।' तब राम ने बड़े स्नेह से कहा—'वत्स! तुम चक्र के धारी नारायण हो, इसलिए राज्याभिषेक तुम्हारा ही होना उचित है।' तब अन्त में सबने यह निश्चय किया कि राज्याभिषेक दोनों का होना चाहिए।

नाना प्रकार के बाजे बजने लगे। याचकों को मनोवांछित दान दिया गया। कमल पत्रों से ढके हुए स्वर्ण कलशों में पवित्र जल भर कर उससे दोनों का एक ही आसन पर अभिषेक किया गया। दोनों भाइयों को मुकुट, भुजबन्ध, हार, केयूर, कुण्डलादि आभरण और कौशेय वस्त्र धारण कराये। तीनों खण्डों के आए हुए विद्याधर और भूमिगोचरी राजाओं ने दोनों का जय-जयकार किया। राम और लक्ष्मण का अभिषेक करने के बाद विद्याधर भूमिगोचरी रानियों ने सीता और विशल्या का अभिषेक किया। सीता राम की और विशल्या लक्ष्मण की पटरानी बनी।

अभिषेक के बाद राम ने लंका विभीषण को दी, किष्किधापुर सुग्रीव को, श्रीनगर और हनुरुह द्वीप का राज्य हनुमान को, अलंकारपुर विराधित को, वैताढ्य की दक्षिण श्रेणी का रथनूपुर भामण्डल को दिया और उसे समस्त विद्याधरों का अधिपति बनाया। रत्नजटी को देवोपुनीत नगरी का राज्य दिया। अन्य लोगों का भी यथायोग्य सम्मान किया।

सबसे निवृत्त होकर राम शत्रुघ्न से बोले- भाई! तुझे जो पसन्द हो, वहाँ का राज्य ले ले; चाहे तू आधी अयोध्या ले ले; चाहे पोदनपुर, हस्तिनापुर, बनारस, कौशाम्बी, शिवपुर इनमें से किसी को चुन ले।' शत्रुघ्न बोला—'मुझे तो मथुरा का राज्य चाहिए।' राम ने कहा—'वहाँ हरिवंशी राजा मधु राज्य कर रहा है और वह रावण का दामाद है। उसके पास नागेन्द्र का दिया हुआ त्रिशूल है। उसके कारण उससे कोई युद्ध नहीं कर सकता। लक्ष्मण भी उससे शंकित रहता है। तब तू उसे कैसे जीत सकता है।' शत्रुघ्न बोला— 'आप तो मुझे मथुरा का ही राज्य दे दीजिए। उसका अभिमान मैं चूर करूंगा। राम ने उसका आग्रह देखकर मथुरा का राज्य दे दिया। शत्रुघ्न सबको प्रणाम कर चतुरंगिणी सेना लेकर मथुरा पर आक्रमण करने चल दिया। लक्ष्मण ने उसे अपना सागरावर्त धनुष और कृतान्तवक्त्र सेनापति भी दे दिया।

शत्रुघ्न द्वारा मथुरा-विजय

शत्रुघ्न ने यमुना तट पर अपना पड़ाव डाल दिया। उसने एक गुप्तचर को मथुरा भेजा। उसने आकर समाचार दिए कि आज छह दिन हुए, मधु नन्दन वन में क्रीड़ा करने गया है। सारा परिवार और अनेक सामन्त उसके साथ हैं। वह यहाँ से तीन योजन दूर है। शत्रुघ्न ने मथुरा में जाकर रातों रात उस धन-जन से परिपूर्ण नगरी पर अधिकार कर लिया। शस्त्रालय, कोष और राजमहल पर फौजी पहरा बैठा दिया। शासन सूत्र अपने हाथ में लेकर मथुरा पर रघुवंशियों के शासन की दुर्योंढ़ी पिटवा दी।

प्रातःकाल होते ही किसी ने वन में जाकर राजा मधु से यह समाचार कहा। मधु मथुरा पर शत्रुघ्न का अधिकार सुनकर क्रोध से जलता हुआ मथुरा आया। मधु के पास इस समय त्रिशूलरत्न नहीं था, फिर भी उसने नगर को घेरकर युद्ध की घोषणा कर दी। शत्रुघ्न की कुछ सेना युद्ध के लिए बाहर आई। जब मधु की सेना दबने लगी तब उसका पुत्र लवणार्णव युद्ध के लिए आया और उसने शत्रुघ्न की सेना तितर-बितर कर दी। यह देखकर

कृतान्तवक्त्र सेनापति युद्ध के लिए आया। दोनों में घोर युद्ध हुआ। कृतान्तवक्त्र ने उसकी छाती पर गदा का प्रहार किया, जिससे वह तत्काल मर गया। पुत्र को मृत जानकर मधु स्वयं युद्ध के लिए आया। कृतान्तवक्त्र पीछे हटने लगा। यह देख शत्रुघ्न मैदान में कूद पड़ा। दोनों में घोर युद्ध हुआ। अन्त में मधु मारा गया। शत्रुघ्न ने उसका राजसी ठाठ से दाह संस्कार कराया।

स्वामी के न रहने पर त्रिशूलरत्न को देव उठा कर ले गये और गरुण इन्द्र को दे दिया। इन्द्र ने पूछा—इसे तुम क्यों ले आए। तब देवों ने कहा—शत्रुघ्न ने मधु का वध कर दिया है।' यह सुनकर गरुणेन्द्र शत्रुघ्न को मारने आया। और जब उसने मथुरा की प्रजा को मधु की मृत्यु पर खुशियाँ मनाते देखा तो वह और भी क्रुद्ध हो गया और उसने मथुरा में मरी रोग फैला दिया। प्रजा धड़ाधड़ मरने लगी। शत्रुघ्न प्रजा के इस विनाश से दुखी होकर अयोध्या चला गया।

एक बार नागपुर के राजा श्रीनन्दन के सुरमन्यु, श्रीमन्यु, श्रीनिलय, सर्वसुन्दर, जय, विनय, जालस और जयमित्र ये सात पुत्र मुनि हो गये और तपस्या करके उन्हें ऋद्धि प्राप्त हो गई। वे विहार करते हुए मथुरा पधारे और एक बड़ के नीचे चातुर्मास किया। चारण ऋद्धि के कारण वे चार अंगुल जमीन से ऊपर चलकर दूसरे नगरों में आहार कर शाम को मथुरा वापिस आ जाते थे। मथुरा की सारी प्रजा नगर से भाग गई थी। उन ऋषियों के तप के प्रभाव से धीरे-धीरे मरी रोग शान्त हो गया और प्रजा पुनः नगर में आ गई। शत्रुघ्न भी मथुरा से लौट आया। तब शत्रुघ्न ने सप्तर्षियों से निवेदन किया—'प्रभो! आप इसी नगर में विराजें, जिससे पुनः मरी रोग न हो।' मुनि बोले—'तुम यहाँ जिनालयों का निर्माण कराओ, उनकी प्रतिष्ठा करो। उससे पुनः मरी रोग का भय नहीं रहेगा।' शत्रुघ्न ने महर्षियों की आज्ञा से अनेक जिनमंदिर बनवाये। तबसे मथुरा में खूब आनन्द मंगल होने लगे और प्रजा सुख से रहने लगी।

अब राम-लक्ष्मण ने त्रिखण्ड विजय के लिए प्रयाण किया। जो राजा स्वेच्छा से उपहार लेकर आये, उन्हें आदर-सत्कार करके सन्तुष्ट किया। किन्तु जिन्होंने उनकी आधीनता स्वीकार नहीं की, उनको दण्डित किया। इस प्रकार अल्पकाल में ही भरत क्षेत्र के तीन खण्डों के समस्त राजाओं को, विद्याधरों और भूमिगोचरों को जीतकर नारायण लक्ष्मण त्रिखण्डाधिपति बन गये। उनके सोलह हजार रानियाँ थीं जिनमें आठ मुख्य थीं—विशल्या, रूपवती, वनमाला, कल्याणमाला, रतिमाला, जितपद्मा, भगवती और मनोरमा। राम की रानियों में मुख्य चार पटरानी थीं—सीता, प्रभावती, रतिप्रभा, और श्रीदामा।

सीता का परित्याग

अब राम-लक्ष्मण आनन्दपूर्वक तीनों खण्डों पर शासन कर रहे थे। सोलह हजार मुकुटबद्ध राजा उनकी सेवा में रहते थे। धर्म, अर्थ, काम तीनों पुरुषार्थ उनके अनुकूल थे। एक बार सीता अपने महलों में सो रही थी। उसने रात्रि के पिछले प्रहर में दो सुन्दर स्वप्न देखे। वह शय्या से उठ कर राम के पास गई और निवेदन किया—नाथ! मैंने आज रात्रि के अन्तिम प्रहर में दो स्वप्न देखे हैं। एक में तो दो पूर्ण चन्द्र देखे हैं। उसके बाद दो सिंह मुंह में प्रवेश करते देखे हैं। इन दोनों स्वप्नों का फल आप बतावें।' राम बोले—'देवि! तुम्हारे सिंह के समान दो पराक्रमी पुत्र उत्पन्न होंगे। वे दोनों ही भोगी, त्यागी और मोक्ष मार्ग के प्रवर्तक होंगे और अन्त में कर्म शत्रुओं को नष्ट कर मोक्ष प्राप्त करेंगे।' सीता स्वप्नों का फल सुनकर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने महलों में चली गई।

स्वप्न वाले दिन पुष्पोत्तर विमान से चलकर दो देव सीता के गर्भ में आए। धीरे-धीरे गर्भ बढ़ने लगा। उससे सीता कृश हो गई, मुंह पीला पड़ गया। स्तनों का अग्र भाग काला पड़ गया। सीता की ऐसी हालत देख कर राम ने कहा—'तुम्हें जो दोहला हो, वह कहो, मैं उसे पूरा करूँगा।' सीता ने कहा—'नाथ! मैं सब जगह जाकर भगवान की प्रतिमाओं का पूजन करना चाहती हूँ।' राम सीता को लेकर मंदिरों में गये और आनन्दपूर्वक पूजा की। पूजा करते समय सीता की दाईं आंख फड़की। सीता यह देखकर किसी अनिष्ट की आशंका से चिन्तित हो गई। विघ्न शांति के लिए उसने यथेच्छ दान दिया और महलों को लौट आई।

रामचन्द्र जी वहीं प्रासाद मण्डप में अनेक लोगों के साथ बैठे रहे। तभी द्वारपाल ने आकर निवेदन

किया—'महाराज ! बहुत प्रजाजन आपके दर्शनों के लिए आना चाहते हैं।' राम ने सबको अन्दर ले आने की आज्ञा दी। प्रजाजन आकर नमस्कार कर यथास्थान बैठ गये। राम ने पूछा—'कहिए, आप लोग कैसे आए। मेरे राज्य में आपको कोई कष्ट तो नहीं है?' यह सुनकर सब चुप रह गये। राम ने फिर कहा—'आप लोग भय मत करिए, जो कुछ मन में हो, निस्संकोच कहिए।' अभय पाकर एक लोकचतुर विजय नाम का प्रजाजन हाथ जोड़कर बोला—'प्रभो ! निवेदन यह है कि आजकल देश में बड़ा अनाचार फैल रहा है। एक की स्त्री दूसरा भगा ले जाता है और वह दो तीन महीने उसके घर रहकर वापिस आ जाती है। यदि कोई पूछता है कि उस व्यभिचारिणी स्त्री को तुमने क्यों रख लिया। तो जवाब मिलता है कि रामचन्द्र जी भी तो सीता को रावण के घर से छह महीने के बाद ले आये हैं। जब छह महीने रावण के संपर्क में रहने वाली सीता को राम जैसे धर्म धुरन्धर मर्यादा पुरुषोत्तम राजा भी पुनः अंगीकार कर सकते हैं, तब वे हमें अपनी अपहृत स्त्रियों को रखने से कैसे रोक सकते हैं। इस तरह दुष्ट लोग दिनदहाड़े आपका उदाहरण देकर यह अनाचार कर रहे हैं। अतः जिस प्रकार यह अनाचार रुके, वह उपाय आपको करना चाहिए।

प्रजाजनों की यह बात सुनकर क्षण भर को राम गम्भीर हो गये, फिर बोले—अच्छा, आप लोग जाइये, मैं इसका कुछ उचित उपाय करूँगा। प्रजाजन लौट गये।

रामचन्द्र जी सोचने लगे—हाय ! जिसके बिना मैं व्याकुल रहा, जिसके लिए रावण को मारने समुद्र पार कर गया, उसके बिना तो मेरा जीना ही व्यर्थ हो जायेगा। हाय ! सुशील गुणवती सीता मुझसे कैसे छोड़ी जाएगी। उसके बिना तो मैं एक घड़ी भर भी स्थिर नहीं रह सकता, उसके बिना मैं जीवन भर उसका दुःख कैसे सहूँगा। यदि उसे न छोड़ा तो सदा के लिये मेरे कुल में कलंक लग जायेगा।' इस प्रकार सोचकर उन्होंने लक्ष्मण को बुलाया और बोले—'वत्स ! सीता के बारे में बड़ा लोकापवाद फैल रहा है। अतः मैं उसे जंगल में छोड़ देना चाहता हूँ।' लक्ष्मण यह सुनकर बड़ा क्रुद्ध होकर बोला—'कौन दुष्ट सीता को लेकर अपवाद फैला रहा है। मैं उसका अभी तलवार से सिर उतारता हूँ। सीता के समान आज भी कोई पतिव्रता नहीं दीखती। उसमें जो दोष बतलाता है, मैं उसकी जीभ काट लूँगा। समझ में नहीं आता, दुष्ट लोगों के कहने से आप सीता को कैसे छोड़ रहे हैं। राम ने समझाया—'लक्ष्मण ! ऐसा मत कहो। सीता को रखने से हमारे वंश में हमेशा के लिए कलंक लग जाएगा। अतः मैं सीता का अवश्य परित्याग करूँगा। तुम्हें अगर मुझसे स्नेह है तो इस विषय में मौन ही रहना। हे लक्ष्मण ! जैसे सूखे ईंधन में लगी अग्नि जल से बुझाये बिना वृद्धि को प्राप्त होती है, उसी प्रकार अपकीर्ति रूपी अग्नि पृथ्वी पर फैलती है। उसका निवारण किए बिना मिटती नहीं। यह तीर्थंकरों का समुज्वल कुल प्रकाश रूप है। इसको कलंक न लगे, वह उपाय करना चाहिए। यद्यपि सीता महा निर्दोष है, शीलवती है फिर भी मैं उसका परित्याग करूँगा, मैं अपनी कीर्ति मलिन नहीं करूँगा।' किन्तु लक्ष्मण को इन बातों से सन्तोष नहीं हुआ। वे उद्वेग से बोले—'देव ! लोग तो मुनियों की भी निन्दा करते हैं, धर्म की भी निन्दा करते हैं तो क्या लोगों के अपवाद के डर से मुनियों को छोड़ दें, धर्म को छोड़ दें। इसी तरह कुछ दुष्ट लोगों के अपवाद के भय से जानकी को कैसे छोड़ दें।' तब रामचन्द्र जी समझाने लगे—'लक्ष्मण ! जो शुद्ध न्यायमार्गी मनुष्य हैं, वे लोक विरुद्ध कार्य छोड़ देते हैं। जिसकी दसों दिशाओं में अकीर्ति फैल रही हो, उसे संसार में क्या सुख है।'

यह कहकर राम ने कृतान्तवक्त्र सेनापति को बुलाया। और उससे कहा कि 'तुम तीर्थ यात्रा कराकर सीता को किसी बियाबान जंगल में ले जाओ और वहाँ छोड़कर शीघ्र लौट आओ।' 'जो आज्ञा' कहकर सेनापति रथ लेकर सीता के महल पर गया और कहा 'माता ! उठो। रामचन्द्र की आज्ञानुसार तुम्हें तीर्थ यात्रा के लिए चलना है।' सीता बड़ी प्रसन्नता से उठीं, तैयार हो सबसे मिलकर यात्रा को चली। विशल्या आदि रानियों ने सीता के पैर छुए। सीता ने अपनी सासुओं के पैर छुए और देवरानियों से बोली—'तीर्थयात्रा कर शीघ्र ही लौटकर सबसे मिलूंगी। वैसे तो इस हालत में न जाती परन्तु सौभाग्य से मुझे दोहला ही ऐसा हुआ है कि मैं तीर्थ वन्दना करूँ और दान पुण्य करूँ। अगर सकुशल लौट आई तो फिर सबके दर्शन करूंगी। आप सब मेरे अपराधों को क्षमा करना।' इस तरह कहकर सीता रथ में बैठकर राम के पास गई और उनसे आज्ञा लेकर यात्रा को विदा हुई।

चलते समय अपशकुन हुए। नदी, पर्वतादिकों को लांघता हुआ रथ यात्रा कराता हुआ आगे बढ़ा और सिंहाटवी में पहुँचा। सिंह व्याघ्रादि से भरे हुए उस वन में सेनापति ने रथ रोक दिया। सेनापति कुछ कहना ही चाहता था कि उसकी आंखों से अश्रुधारा बह निकली। सीता ने पूछा-'भाई! हम लोग तीर्थयात्रा को निकले हैं। ऐसे हर्षपूर्ण प्रसंग में तुम्हारे दुःख का अभिप्राय मैं नहीं समझी।' सेनापति ने कहा--'माता! बड़े पाप के फल से कुत्ते के समान यह दास का जीवन मिलता है। दास बड़े पाप के फल से नरकों में जाता है और वहाँ से निकल कर चाण्डालादि योनियों में जन्म लेता है।" सीता बोली-'वत्स! तुम ऐसा क्यों कहते हो?' सेनापति ने कहा—'माता! महाराज रामचन्द्र जी की आज्ञा है कि मैं तुम्हें यहीं जंगल में छोड़ दूँ। उनका कहना है कि यद्यपि सीता निर्दोष है, फिर भी लोकापवाद के कारण मैं उसे रखने को तैयार नहीं हूँ। किन्तु तुम्हें एकाकी इस वन में किस प्रकार छोड़ूँ। और यदि नहीं छोड़ता हूँ तो महाराज रामचन्द्र नाराज होंगे। मेरे रोने का यही कारण है।'

सेनापति के वचन सुनते ही सीता को मूर्च्छा आ गई। जब उसे होश आया तो बोली—'हे वीर! मुझे एक बार अयोध्या ले चलो। रामचन्द्र जी के चरणों के दर्शन करके और उनसे अपने मन की बात कह कर मैं पुनः वन में चली आऊँगी।' किन्तु सेनापति बोला—'देवि! इस समय रामचन्द्र जी क्रोध और कठोरता की मूर्ति हो रहे हैं। अतः उनके दर्शन करना भी बेकार है।' सीता ने कहा—'हे सेनापति! तुम मेरे वचन राम से कहना कि मेरे त्याग का विषाद आप न करना, परम धैर्य धारण कर प्रजा की रक्षा करना, जैसे पिता पुत्र की रक्षा करता है। राजा को प्रजा ही आनन्द का कारण है। आप मुक्ति के कारण सम्यग्दर्शन की आराधना करना और राज्य से सम्यग्दर्शन को श्रेष्ठ मानना। अभव्य जनों की निन्दा के भय से सम्यग्दर्शन को मत छोड़ना। आप सब शास्त्रों के ज्ञाता हो, अतः मैं आपको कोई उपदेश देने में समर्थ नहीं हूँ। यदि मैंने कभी परिहास में अविनयपूर्ण वचन कहे हों तो आप क्षमा करना।' इस प्रकार कहकर रथ से उतर कर वह मूर्च्छा खाकर पृथ्वी पर गिर पड़ी, मानो रत्नों की राशि ही पड़ी हो।

कृतान्तवक्त्र सीता को चेष्टारहित मूर्छित देख कर बड़ा दुखी हुआ और मन में विचारने लगा—धिक्कार है इस पराधीनता को, जिसके कारण मुझे महासती सीता को निर्दय जीवों से भरे हुए इस वन में अकेला छोड़कर जाना पड़ रहा है। पराधीन जीवन बड़े पाप का फल है। स्वामी की आज्ञा के अनुसार ही चलना सेवक का एकमात्र काम है। यह पराधीनता कभी किसी को प्राप्त न हो।' यों सोचकर अत्यन्त दुखी और लज्जित होता हुआ वह वहाँ पर ही सीता को अकेली छोड़कर अयोध्या को चल दिया।

इधर सीता को जब होश आया तो वह विलाप करने लगी—'आर्यपुत्र! आप सब की रक्षा करते थे, किन्तु मेरे लिए इतने कठोर कैसे बन गये। देवर लक्ष्मण! भाई भामण्डल! तुम मुझे कैसे भूल गये। भरत! शत्रुघ्न! तुम्हीं आकर मुझे इस वन में ढाढस बंधाओ। क्या तुम सबने मुझे छोड़ दिया। विद्याधरो! तुम मेरी रक्षा करने को लंका गये थे, अब तुम मेरी रक्षा क्यों नहीं करते। इस प्रकार विलाप करके वह बार-बार मूर्छित होने लगी। सीता का विलाप सुनकर जंगल के पशु भी स्तब्ध रह गये। सीता पुनः मन को सान्त्वना देने लगी-इसमें राम या किसी अन्य का क्या दोष है। मैंने जो शुभाशुभ कर्म किये हैं, उनका फल मुझे भोगना ही होगा। शायद मैंने किसी जन्म में मुनि-निन्दा की हो, सतियों को दोष लगाया हो या कोई ऐसा ही पाप किया हो। इस प्रकार सीता कभी विलाप करती, कभी आत्म निन्दा करती हुई हिरणी की भांति इधर उधर फिरने लगी।

सीता करुण क्रन्दन करती हुई वन में फिर रही थी तभी पुण्डरीकपुर का हरिवंशी राजा वज्रजंघ सेना सहित हाथी पकड़ने इसी जंगल में आ निकला। हाथी पकड़कर लौटते हुए उसने सीता का विलाप सुना। वह शीघ्र सीता के पास आया। सेना को देखकर सीता और भी भयभीत होकर विलाप करने लगी। वन देवी की तरह सीता को बैठी देखकर सेना कौतुक से और भी समीप आई। सीता डरकर उन्हें अपने गहने देने लगी। तब वज्रजंघ हाथी से उतर कर सीता के समीप आया और बोला—पुत्री! तू इस वन में अकेली क्यों है। तेरे पिता, पति और श्वसुर कौन हैं? सीता ने रोते हुए कहा—'भाई! मैं दशरथ की पुत्र वधू, और जनक की पुत्री हूँ। रामचन्द्र मेरे पति हैं। और भामण्डल मेरा भाई है। भरत को राज्य सौंपकर मेरे पति वन को गये थे। उनके साथ मैं भी गई

थी। वहाँ दण्डक-वन में पापी रावण ने मुझे हर लिया। इसके लिए राम ने रावण पर आक्रमण कर दिया। उस युद्ध में रावण मारा गया। हम लोग प्रेमपूर्वक अयोध्या वापिस गये। वहाँ समयानुसार मैं गर्भवती हुई। इसके बाद जनता ने इसका अपवाद करके रामचन्द्र से शिकायत की। उन्होंने उस लोकापवाद के कारण मेरा परित्याग कर दिया। इस तरह अपना सारा वृत्तान्त कह कर वह पुनः रोने लगी। सीता का करुण आक्रन्दन सुनकर वज्रजंघ और उसके सैनिकों के भी आंसू निकलने लगे। वज्रजंघ ने कहा—तू मेरी बहन है। मैं तेरा भाई हूँ। चलो, हम लोग घर चलें। वहाँ रहने से फिर रामचन्द्र जी के दर्शन होंगे। इस तरह सीता को समझा बुझा कर वह पालकी में बैठाकर अपने घर ले गया। मार्ग में सीता का परिचय पाकर जगह जगह लोगों ने उसका सम्मान सत्कार किया। नगर प्रवेश करते ही जनता ने बड़े समारोह से उसकी अगवानी की। राजद्वार पर आकर वज्रजंघ की रानियाँ बड़े आदर और सम्मान के साथ सीता को अन्दर ले गईं। वज्रजंघ ने आदेश कर दिया कि सीता मेरी बहिन है अतः सब काम उसकी आज्ञानुसार होने चाहिए। सब रानियों ने राजाज्ञा शिरोधार्य की। सीता वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगी तो भी रामचन्द्र जी के बिना उसे सूना सूना लगता था।

उधर कृतान्तवक्त्र वापिस अयोध्या लौटा और रामचन्द्र जी के निकट पहुँचा और नमस्कार कर बोला—'प्रभो! आपकी आज्ञानुसार मैं सीता को भयानक वन में छोड़ आया हूँ।' राम बोले—'सीता ने मेरे लिए कुछ कहा तो नहीं।' तब सेनापति ने सीता का दिया हुआ सन्देश रामचन्द्र जी को कह सुनाया। सेनापति के मुख से सीता का सन्देश सुनते ही राम मूर्च्छा को प्राप्त हो गये। जब चेत आया तो वे विलाप करने लगे। फिर कृतान्तवक्त्र से पुनः पुनः पूछने लगे—'कृतान्तवक्त्र! कह, क्या तूने सीता को वन में छोड़ दिया? यदि तूने किसी शुभ स्थान में छोड़ा हो तो तेरे मुखचन्द्र से अमृत रूप वचन बिखरें। यह सुनकर सेनापति ने लज्जा से नीचा मुख कर लिया। तब राम ने समझ लिया कि यह निश्चय ही सीता को भयानक वन में छोड़ आया है। यह समझ कर राम पुनः मूच्छित हो गये। तब लक्ष्मण आये और मन में दुखित होते हुए कहने लगे—'देव! क्यों व्याकुल होते हो। धैर्य धारण कीजिए। पूर्वोपार्जित अशुभ कर्मों का फल भोगना ही पड़ेगा। केवल सीता को ही दुःख नहीं हुआ। सारी प्रजा ही दुखी है। यह कहते ही लक्ष्मण का भी धैर्य जाता रहा और वे भी रुदन करने लगे। 'हाय माता! तू कहाँ गई। जैसे सूर्य बिना आकाश की शोभा नहीं है, इसी प्रकार तेरे बिना अयोध्या की शोभा नहीं रही। फिर राम से कहने लगे, 'हे देव! सारे नगर में गीत संगीत की ध्वनि बन्द हो गई और रुदन की ध्वनि आती रहती है। घर घर में सब लोग रुदन करते हैं और सीता के अखण्ड सतीत्व और गुणों की ही चर्चा करते रहते हैं। अतः आप शोक छोड़िये आपका चित्त प्रसन्न है तो सीता को फिर बुला लेंगे। इस तरह समझाने बुझाने से राम का शोक कुछ क्षणों के लिए कम हो गया। किन्तु वे सीता को भुला नहीं सके। उनका मन एक क्षण के लिए भी सीता के बिना नहीं लगता था।

लव-कुश का जन्म और दिग्विजय—नौ मास बीतने पर श्रावण शुक्ला पूर्णिमा मंगलवार के दिन श्रवण, नक्षत्र में सीता ने दो पुत्रों को जन्म दिया। दोनों पुत्र सूर्य और चन्द्र की तरह कांतिमान थे। उनका मुख देखकर सीता के साथ साथ सब जनों को परम सन्तोष हुआ। वज्रजंघ ने खूब उत्सव मनाया, जिनेन्द्र देव की पूजा की और याचकों को यथेच्छ दान दिया। बड़े पुत्र का नाम अनंगलवण और छोटे का नाम मदनांकुश रखा गया।

धीरे-धीरे दोनों बालक बढ़ने लगे। उनका मुख देखकर सीता अपना शोक भूल गई। जब वे कुछ बड़े हुए तो सीता को चिन्ता हुई कि इन्हें किस गुरु के पास पढ़ने भेजा जाय। इतने में सिद्धार्थ नामक एक क्षुल्लक भिक्षा के लिए सीता के घर पधारे। वे महाज्ञानी, शील सम्पन्न, तथा कला-विज्ञान के पारगामी थे। शरीर पर केवल एक वस्त्र रखते थे, केशलोंच करते थे, अपने पात्र में ही भोजन करते थे और सदा ज्ञान ध्यान में लीन रहते थे। सीता ने उन्हें आहार कराया। आहार करने के पश्चात् वे एक आसन पर बैठ गये। सीता भी इन्हें नमस्कार करके पास ही बैठ गई। इतने में दोनों कुमार भी आ गये। उन्हें देखकर क्षुल्लक ने पूछा—'ये दोनों सुन्दर कुमार किसके हैं?' क्षुल्लक का प्रश्न सुनकर सीता ने आंखों में आंसू भरकर उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। सुनकर क्षुल्लक बोले—'दुःख मत करो पुत्री! तुम्हारे दोनों पुत्र राजा होकर मुक्ति प्राप्त करेंगे। मैं इन्हें सब विद्याओं में निपुण

कर दूँगा।' यह सुनकर सीता बड़ी प्रसन्न हुई। क्षुल्लक वहीं एकान्त स्थान में रहने लगे और बालकों को पढ़ाने लगे। थोड़े ही समय में दोनों बालक शस्त्र विद्या और शास्त्रविद्या में निपुण हो गये।

अब वे हाथी पर सवार होकर नगर में क्रीड़ा करते घूमते थे। वज्रजंघ ने बड़े पुत्र अनंगलवण के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। अब उसे दूसरे पुत्र के विवाह की चिन्ता हुई। तब उसने पृथ्वीपुर के राजा पृथु के पास उनकी कन्या कनकावली को अपने दूसरे पुत्र के लिए माँगने के लिए अपने मंत्री को भेजा। किन्तु राजा पृथु ने बड़ा कटु उत्तर दिया कि जिसके कुल गोत्र का ठिकाना नहीं, उसके लिये मैं अपनी पुत्री को कैसे दे सकता हूँ। वज्रजंघ ने जब मंत्री से पृथु का यह अभद्रतापूर्ण उत्तर सुना तो उसे बड़ा क्रोध आया। वह सेना लेकर पृथु का मान-मर्दन करने चल दिया। मार्ग में वंशपुर का राजा व्याघ्ररथ जो पृथु के पक्ष का था—युद्ध करने आया। उसे पराजित कर वज्रजंघ ने पृथ्वीपुर को घेर लिया। राजा पृथु ने अपने मित्र पोदनपुर के राजा को बुलाया। वह सेना लेकर मैदान में आ डटा। दोनों ओर से भीषण संग्राम हुआ किन्तु दोनों की सम्मिलित शक्ति के मुकाबले वज्रजंघ ठहर नहीं सका। तब उसने दोनों कुमारों को बुला भेजा। दोनों पुत्र और वज्रजंघ के पुत्र फौरन युद्ध-स्थल में आये। दोनों कुमारों ने थोड़ी ही देर में पृथु को पकड़ लिया। साथ ही पोदनपुर के राजा को भी उसके रथ में ही धर दबाया और उसे पकड़ लिया। दोनों राजकुमारों को प्रणाम कर पृथु बोला—आप दोनों भाई उच्च कुलीन और ज्ञानवान हैं। मैंने अज्ञानता में जो अपराध किया, उसे आप क्षमा कर दें।' इस तरह विनयपूर्वक निवेदन करके उसने अपनी पुत्री कनकमाला का विवाह मदनांकुश के साथ कर दिया। कुमारों ने दोनों राजाओं को बंधन मुक्त कर दिया और एक महीने पृथ्वीपुर में ठहर कर दिग्विजय करने निकले। उनके साथ राजा पृथु, पोदनपुर का राजा और वज्रजंघ भी चले। वे लोकाक्ष, मालवा, अवन्ति, तिलिंग आदि दक्षिण देशों को जीतते हुए कैलाश पर्वत की ओर पूर्व दिशा में गये। उधर के अनेक राजाओं को जीतते हुए पश्चिम के राजाओं को जीता। पश्चात् विजयार्ध के समीप सिन्धु के किनारे के राजाओं को जीता। इस तरह तमाम पृथ्वी को जीतते हुए वे अपने नगर को लौट आये। प्रजा ने कुमारों का खूब स्वागत किया। वज्रजंघ के साथ कुमार राजद्वार पर पहुँचे। रानियों ने तीनों की आरती उतारी। सीता भाई से मिली और कुमारों ने सीता के पैर छुए। सीता ने दोनों को आशीर्वाद दिया।

एक दिन देवर्षि नारद अयोध्या गये। नारद ने वहाँ सीता को न देखकर राम से पूछा—'यहाँ सीता कहीं दिखाई नहीं देती।' नारद का प्रश्न सुनकर कृतान्तवक्त्र ने सारा समाचार सुनाया। उसे सुनकर नारद को बड़ा दुःख हुआ और वे सीता को खोजने चल दिये। घूमते हुए वे पुण्डरीकपुर पहुँचे और वज्रजंघ की आज्ञा लेकर अन्तःपुर में गये। सीता ने उन्हें प्रणाम किया और बैठने को उच्च आसन दिया। नारद सीता को देखकर बड़े प्रसन्न हुए। नारद ने सीता से कुशल समाचार पूछे तो सीता ने आपबीती सारी घटना कह सुनाई। इतने में वहीं पर दोनों कुमार आ गये और नारद के पैर छूकर खड़े हो गये। नारद ने उन्हें आशीर्वाद दिया—'राम-लक्ष्मण के समान तुम्हारे भी खूब विभूति हो।' कुमारों ने नारद से पूछा—'ये राम-लक्ष्मण कौन हैं।' नारद बोले—'क्या तुमने नारायण और बलभद्र लक्ष्मण राम का नाम नहीं सुना जिन्होंने सीता को हरने वाले महा बलवान रावण को मारा है और जो तीन खण्ड के अधिपति बन कर अयोध्या में शासन कर रहे हैं। उन्हीं में से बलभद्र के तुम दोनों पुत्र हो।' तब कुमारों ने सीता से पूछा कि नारद जी जो कुछ कह रहे हैं, क्या वह सत्य है? तब सीता ने सब आप बीती सुना दी। माता का वृत्तान्त सुनकर दोनों पुत्र क्रुद्ध होकर राम लक्ष्मण को मारने के लिए तैयार हुए। नारद जी ने मना किया तो लवणांकुश तेजी में बोला—लोगों के कहने में आकर पिता ने क्यों हमारी माँ को छोड़ दिया। क्या उस समय अयोध्या में न्याय की बात कहने वाला कोई नहीं था कि एक स्त्री को भयानक वन में अकेली क्यों छोड़ा जाता है। अगर मामा ने माँ को न रखा होता तो अब तक माँ को शेर चीते खा जाते। आप बताइये, अयोध्या यहाँ से कितनी दूर है। हम भी तो देखें, पिता कितने पानी में हैं।' नारद ने कहा—'अयोध्या यहाँ से एक सौ साठ योजन है।' लवणांकुश ने मामा से कहा—'हम राम लक्ष्मण पर चढ़ाई करेंगे, आप सेना सजवाइये।' सीता ने पुत्रों से मना किया—बेटा! तुम राम लक्ष्मण के साथ लड़ाई मत ठानो। वे बड़े बलवान हैं। उन्होंने तीन खण्ड के अधिपति और अनेक विद्याओं के स्वामी रावण को भी मार दिया।' लवणांकुश बोला—'माँ! हम लोग रावण की तरह

परस्त्री लंपट नहीं हैं। हम तुम्हारे चरणों की सौगन्ध खाते हैं कि हम उन्हें पीठ दिखाकर नहीं आवेंगे।' इस तरह कहकर दोनों कुमार चतुरंग सेना सजाकर युद्ध के लिए चल दिये।

अनेक देशों को जीतते हुए वे अयोध्या पहुँचे। किसी शत्रु-सैन्य का आगमन सुनकर राम लक्ष्मण से बोले —सेना तैयार करो। वज्रजंघ को मारने हमें जाना ही था, किन्तु वह स्वयं मरने के लिए यहाँ आ गया है।' लक्ष्मण ने दूत भेजकर हनुमान, विराधित, विभीषण आदि को भी बुला लिया। युद्ध भेरी बजाई गई। राम सिंहरथ पर सवार होकर सबसे आगे चले। उनके पीछे गरुड़ रथ पर चक्र हाथ में लेकर लक्ष्मण चले। उनके पीछे असंख्य राजा और सैन्य चली। दोनों सेनायें एक दूसरे के सम्मुख आ डटीं।

सीता, सिद्धार्थ क्षुल्लक और नारद मुनि के साथ ऊपर विमान में बैठी हुई थीं। दोनों ओर से युद्ध की तैयारी देखकर सीता चिंतित होकर नारद से बोली—यह आपने क्या किया? कुमार अभी बालक हैं। वे बलभद्र और नारायण से कैसे लड़ेंगे। दोनों ओर से कोई अनिष्ट हुआ तो मैं कहीं की नहीं रहूँगी।' नारद ने कहा—'पुत्री! डरो मत। ये दोनों कुमार चरमशरीरी और वज्रमयी शरीरधारी हैं। इस प्रकार सीता को समझा कर नारद भामण्डल के पास पहुँचे और उसे कुमारों का परिचय दिया। भामण्डल हनुमान को लेकर सीता के पास पहुँचा। दोनों कुमार भी वहाँ आकर भामण्डल और हनुमान से मिले। युद्ध शुरू होने से पहले ही भामण्डल और हनुमान राम का पक्ष छोड़कर लवणांकुश की ओर आ मिले। यह देखकर अन्य विद्याधर भी युद्ध से तटस्थ हो गये। युद्ध प्रारम्भ हो गया। लवण के योद्धाओं ने राम की सेना को छिन्न भिन्न कर दिया। यह देखकर शत्रुघ्न युद्ध करने आया। उसे देखकर लव और कुश युद्ध करने आगे आये और शत्रुघ्न को बाणों से आच्छादित कर रथ से नीचे गिरा दिया। यह देखकर क्रुद्ध होकर राम और लक्ष्मण शत्रु सेना का संहार करते हुए इन दोनों कुमारों के सामने आ डटे। लवणांकुश के साथ राम और मदनांकुश के साथ लक्ष्मण युद्ध करने लगे तथा वज्रजंघ शत्रुघ्न से युद्ध करने लगा। भयंकर युद्ध हुआ। अनेक हाथी, घोड़े, सैनिक मारे गये। रथों का चूरा हो गया। खून की नदी बहने लगी। खून की कीचड़ मच गई। राम ने हल उठाकर मारा, किन्तु लव ने उसे व्यर्थ कर दिया। राम ने दिव्य अस्त्र चलाये, किन्तु लव पर उनका कोई प्रभाव नहीं हुआ। बाद में लवण ने राम का रथ तोड़ दिया। राम बार-बार रथ बदलते और लवण उसे तोड़ देता। राम व्याकुल हो गये। राम सोचने लगे—मेरे सारे अस्त्र व्यर्थ हो गये, सारे विद्याधर धोखा दे गये। दिव्यास्त्रों का इस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। भूमिगोचरी राजा इसने मार दिये। मेरे भी तीन बार इसने रथ तोड़ दिये। राम इस प्रकार सोच ही रहे थे कि लवण ने उनके वक्षस्थल पर प्रहार किया। वे मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े। राजाओं ने उठाकर राम को कठिनाई से सचेत किया।

उधर लक्ष्मण सागरावर्त धनुष लेकर क्रोध से मदनांकुश पर झपटे। उन्होंने अनेक बाण छोड़े किन्तु कुश ने उन सबको व्यर्थ कर दिया। लक्ष्मण ने तब गदा उठाकर मारी किन्तु कुश ने उसे धनुर्दण्ड से रोक दिया। फिर कुश ने लक्ष्मण पर वज्र का प्रहार किया। लक्ष्मण वज्र की चोट से बेहोश हो गये। विराधित रथ लौटाने लगा किन्तु लक्ष्मण ने उसे डांट दिया। तब कुश ने लक्ष्मण को बाणों से ढंक दिया और सात बार लक्ष्मण का रथ तोड़ दिया। तब क्रुद्ध होकर लक्ष्मण ने कुश पर चक्र फेंका, किन्तु चक्र कुश की प्रदक्षिणा देकर लौट आया। इस प्रकार लक्ष्मण ने सात बार चक्र मारा, किन्तु हर बार वह लौट आया। तब कुश ने लक्ष्मण पर धनुर्दण्ड घुमाया। सब लोग आश्चर्य से सोचने लगे—यह कोई नया नारायण पैदा हुआ है या कोई चक्रवर्ती आ गया है। लक्ष्मण सोचने लगे—मेरा पुण्य ही क्षीण हो गया है। इस प्रकार लक्ष्मण सोचते हुए खड़े रह गये।

तब नारद और सिद्धार्थ लक्ष्मण के पास आये और बोले—ये दोनों प्रतिद्वन्द्वी राम के पुत्र लवण और अंकुश हैं। जिस सीता को आप लोगों ने भयानक वन में ले जाकर छोड़ दिया था, उसे वज्रजंघ अपनी बहिन बना कर ले गया था। उसी के ये दोनों पुत्र माता के दुःख से क्रोधित होकर आपसे लड़ने आये हैं। लक्ष्मण रथ से उतर पश्चाताप करता हुआ राम के पास गया और जाकर दोनों पुत्रों का वृत्तान्त बताया।

इसके बाद दोनों कुमारों ने आकर राम लक्ष्मण के पैर छुए। उन्होंने उन दोनों कुमारों को छाती से लगा लिया। राम सीता-त्याग की घटना याद करके विलाप करने लगे। उन्हें विलाप करते देखकर अन्य लोगों के

भी आंसू आ गये। विद्याधर और भूमिगोचरी राजा मिलकर राम के निकट आये। युद्ध बन्द हुआ। सब लोग परस्पर गले मिले। अपने पुत्रों का माहात्म्य देखकर सीता पुण्डरीकपुर लौट गई। भामण्डल की रानियां भी सीता के साथ गई। युद्ध समाप्त हो जाने के बाद भामण्डल, सुग्रीव, विभीषण, नल, नील, अंग, अंगद हनुमान तथा अन्य विद्याधर सीता को देखने पुण्डरीकपुर गये। सबने सीता को प्रणाम किया, सीता ने उन्हें आशीर्वाद दिया। फिर सब लोग अयोध्या वापिस आ गये। पुत्रों के समागम की खुशी में अयोध्यावासियों ने बड़ा हर्ष मनाया। नगर खूब सजाया गया। रामचन्द्र जी दोनों पुत्रों के साथ हाथी पर बैठकर नगर में आये। स्त्रियों ने कुमारों की आरती उतारी। राम लक्ष्मण ने वज्रजंघ का खूब सत्कार किया।

सीता जी की अग्नि-परीक्षा

एक दिन विभीषण, हनुमान आदि विद्याधरों ने हाथ जोड़कर रामचन्द्र जी से निवेदन किया—प्रभो! सीता पुण्डरीकपुर में जाने कैसे अपना समय व्यतीत करती होगी। अगर आप आज्ञा दें तो उन्हें जाकर ले आवें।' यह सुनकर रामचन्द्र जी आंखों में आंसू भर कर बोले—'मैं जानता हूँ कि सीता निर्दोष है। परन्तु उसे ले आने से लोग फिर अपवाद करेंगे। अगर सीता अग्नि में प्रवेश करके अपनी निर्दोषता की परीक्षा दे तो मैं उसे रख सकता हूँ।' 'अच्छा' कहकर विद्याधर लोग पुण्डरीकपुर पहुँचे और सीता से जन समुदाय के सामने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने की प्रार्थना की। सीता ने कहा—मैं अब संसार के सुखों में पुनः प्रवेश नहीं करना चाहती। यदि मेरे भाग्य में सुख ही होते तो ये दुःख ही क्यों आते। जब मुझे कलंक लग चुका तो क्या लेकर उन्हें अपना मुह दिखाऊँ।' विभीषण बोला—'दुःख करने से क्या लाभ है। जो कुछ होता है, सब अपने भाग्य से होता है। अतः आप ऐसा कीजिये कि सब लोगों पर आपका विश्वास जम जाय। ऐसा करने से आपकी भी कीर्ति होगी।' सीता ने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करना स्वीकार किया और प्रसन्नता से विमान में बैठ गई।

सीता अयोध्या आई। वह महेन्द्र उद्यान में ठहराई गई। देश-विदेश के लोगों को निमन्त्रण-पत्रिका भेजी गई। देश विदेश के लोग आकर एकत्रित होने लगे। रामचन्द्र जी महल के समीप ही एक मंच पर बैठ गये। राजा लोग भी यथास्थान बैठ गये। आज्ञा पाकर विद्याधर लोग सीता को हाथी पर बैठाकर सभा-मण्डप में ले आये। सीता को आते देखकर लोग हर्षित हो उठे। अब सीता निकट आ गई तो राजा गण खड़े हो गये। लक्ष्मण, शत्रुघ्न आदि ने उनके पैर छुए। सीता राम के निकट आई। रामचन्द्र जी की उदासीनता देखकर सीता मन में अत्यन्त व्याकुल हुई किन्तु फिर उनके पैर छू कर सामने खड़ी हो गई और लज्जा से निगाह नीची करके पैर के अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी। उसे ख्याल आने लगा कि मैं यहाँ क्यों आई। इतने में रामचन्द्र जी बोले—'सीता! सामने से दूर हो। तू यहाँ क्यों आई। छह महीने तू रावण के यहाँ रही है। अब किस मुँह से मैं तुझे अपने यहाँ रक्खूं। मैं जानता हूँ कि तू निर्दोष है। परन्तु जब तक लोग तुझे निर्दोष न मान लें, तब तक मेरे यहाँ तुम्हारी गुंजायश नहीं है।' यह सुनकर सीता ने कहा—मुझे सब स्वीकार है। अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिये आप कहें तो मैं सांप के मुंह में अपना हाथ दे दूं, आप कहें तो हलाहल विष पीलूं, आप कहें तो तपे हुए लोहे के गोले हाथ में ले लूं, आप कहें तो आग में कूद पड़ूं। आप जो कुछ कहें, वह सब मैं करने को तैयार हूँ। राम क्षण भर सोचकर बोले—'आग में प्रवेश कर अग्नि-परीक्षा दो।' यह सुनकर नारद सोचने लगे—अग्नि का क्या विश्वास, न जाने क्या अनर्थ हो जाय। विभीषण हनुमान आदि भी इस आज्ञा से व्याकुल हो गये। लक्ष्मण, शत्रुघ्न, लवण और अंकुश भी बड़े दुःखी हुए। क्षुल्लक सिद्धार्थ ने खड़े होकर कहा—'महाराज! मैं विद्या के बल से सर्वत्र चैत्यालयों को वंदना के लिये जाता रहता हूँ। मैंने मुनियों के मुख से भी सब जगह सीता के सतीत्व की प्रशंसा सुनी है। अतः आप सीता को अग्नि-प्रवेश की आज्ञा मत दीजिये।' विद्याधर और भूमिगोचरी लोग भी एक स्वर से कहने लगे—'प्रभो! सीता सती है, वह निर्दोष है, उन्हें अग्नि प्रवेश की आज्ञा मत दीजिये। राम क्रुद्ध होकर बोले—इतनी दया अब दिखा रहे हो तो पहले सीता का अपवाद क्यों किया था।'

राम की आज्ञा से फौरन दो पुरुष गहरा और तीन सौ हाथ लम्बा चौड़ा गड्ढा खोदा गया और सूखे ईंधन से भरकर अग्नि प्रज्वलित की गई। असंख्य जनता सीता की अग्नि-परीक्षा देखने वहाँ एकत्रित हो गई।

उसी रात को महेन्द्र उद्यान में सकलभूषण मुनि को केवलज्ञान प्राप्त हुआ। देवों ने आकर ज्ञानोत्सव मनाया। चारों निकाय के देवता वहाँ आये। मेघकेतु नामक एक देव सीता की परीक्षा के लिए बनाये गये अग्नि-कुण्ड को देखकर इन्द्र से कहने लगा—'प्रभो! सीता पर घोर उपसर्ग आ पड़ा है। वह महासती शीलवती है। उसे दुःख क्यों हो।' तब इन्द्र ने आज्ञा दी—'मैं तो केवली भगवान का ज्ञानोत्सव मनाने जाता हूँ। तुम महासती का उपसर्ग दूर करना।' मेघकेतु देव अपने विमान में आकाश में ठहर गया।

जब अग्नि-कुण्ड की लपटें आकाश को छूने लगीं तो राम सोचने लगे—कैसे सीता को इस भयंकर आग में कूदने दूँ? सीता जैसी स्त्री इस लोक में नहीं है। यदि मैं इसे अग्नि-प्रवेश से रोकता हूँ तो सदा के लिए मेरे कुल में कलंक लग जायगा। यदि सीता आग में जल कर मर गई तो और भी अनर्थ होगा।' रामचन्द्र जी इधर यह सोच रहे थे, उधर सीता धीरे-धीरे अग्नि-कुण्ड के समीप आई। एकाग्र चित्त होकर उसने ऋषभदेव भगवान से लेकर मुनि-सुव्रतनाथ पर्यन्त तीर्थंकरों की स्तुति की। बाद में बोली—'हे अग्नि! मन से, वचन से, काय से, स्वप्न में या जागृत अवस्था में राम के सिवाय मैंने कभी पर पुरुष की इच्छा नहीं की है। यदि शील में कोई दूषण लगा हो अथवा मैं व्यभिचारिणी हूँ तो हे अग्नि! तू मुझे भस्म कर देना। यदि मैं सती हूँ तो मुझे मत जलाना।' यों कहकर सीता ने णमोकार मंत्र का स्मरण किया और जलती हुई अग्नि में प्रवेश कर गई। लोग भयभीत होकर, आशंकित मन से उसका परिणाम देखने लगे।

अचानक आग बुझ गई। उसके शील के प्रभाव से अग्नि के स्थान पर निर्मल शीतल जल हो गया, मानो धरती को भेदकर ही यह वापिका पाताल से निकली हो। जल में कमल खिल रहे हैं। वहाँ न अग्नि रही, न ईंधन। वहाँ तो जल में झाग उठने लगे, भंवर पड़ने लगे। जैसे समुद्र में गर्जन होता है, इस प्रकार उस वापी में घोर शब्द होने लगा, जल उछल कर बढ़ने लगा। पहले घुटने तक आया, फिर छाती तक आया। फिर सिर के ऊपर होकर पानी चलने लगा। लोग डूबने लगे। तब सब आर्तवाणी में पुकारने लगे—'हे माता! हे महासाध्वी! हमारी रक्षा करो, हमें बचाओ।' जनता की इस विह्वल पुकार पर धीरे-धीरे जल रुका, फिर कम होता गया और सिमट कर तालाब बन गया। उसके मध्य में एक सहस्र दल कमल खिल रहा था। उस कमल के बीच में रत्नमयी सिंहासन पर सीता विराजमान थी। देवांगनायें सेवा कर रही थीं। अनेक देवों ने आकर सीता के चरणों पर पुष्प चढ़ाये। आकाश से सीता के ऊपर पुष्पवर्षा होने लगी। देव और विद्याधर 'सीता सती है' इस प्रकार चिल्लाने लगे, विद्याधर आकाश में नाचने लगे। लवण और अंकुश जल पारकर सीता के पास गये और उसके आजू-बाजू बैठ गये। राम भी विद्याधरों के साथ सीता के निकट पहुँच कर कहने लगे—देवी! उठो, चलो घर चलें। मेरे अपराधों को तुम क्षमा करो। सारे संसार में तुम सती ही नहीं, सतियों में भी प्रधान हो। मेरे प्राणों की रक्षा तुम्हारे ही आधीन है। आठ हजार रानियों में तुम अपना पूर्व का प्रमुख पद संभालो।' सीता ने उत्तर दिया—मुझे अब भोगों से प्रयोजन नहीं है। अब तो मैं ऐसा उपाय करूँगी, जिससे मेरा नारी-जन्म सफल हो। नाथ! आपके साथ मैंने अनेक सुख भोगे, अब उनसे मेरा जी ऊब गया है।' इस प्रकार कहकर सीता ने अपने हाथों से अपने बाल उपाड़ लिये और उन्हें राम के हाथों पर रख दिया। राम उन सुकोमल सुगन्धित बालों को देखकर मूर्छित होकर गिर पड़े। लोग जब तक उन्हें होश में लाने की चेष्टा करते रहे, तब तक सीता ने पृथ्वीमती आर्यिका के पास दीक्षा लेली और आर्यिकाव्रत धारण कर महेन्द्र उद्यान में केवली भगवान के निकट पहुँची।

राम को होश आया तो सीता को न देखकर उन्हें बड़ा शोक हुआ और सीता को देखते हुए वे सकलभूषण केवली भगवान की सभा में जा पहुँचे। भगवान अशोक वृक्ष के नीचे सिंहासन पर विराजमान थे, दिव्य छत्र उन पर लगे हुए थे। चमर ढुर रहे थे। आठ प्रातिहार्य से सम्पन्न थे। चारों ओर देव, मनुष्य और तिर्यंच बैठे हुए थे। रामचन्द्र जी ने वहाँ पहुँचकर अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा की और मनुष्यों के भाग में बैठ गये। लक्ष्मण आदि अन्य लोग भी उसी प्रकार भगवान की स्तुति पूजा कर राम के साथ ही बैठ गये। सबने भगवान का कल्याणकारी उपदेश सुना।

केवली भगवान का उपदेश सुनकर अनेक लोगों ने संसार विरक्त होकर मुनि दीक्षा लेली। सेनापति कृतान्तवक्त्र भी मुनि बन गया और तपस्या करके स्वर्ग में देव हुआ।

सीता ने बासठ वर्ष तक घोर तप किया और अन्त में सन्यासपूर्वक मरण करके सोलहवें स्वर्ग में प्रतीन्द्र हुई।

दीर्घसूत्री भामण्डल का करुण निधन

अपनी स्त्रियों के प्रति भामण्डल की आसक्ति बहुत बढ़ गई। वह निरन्तर स्त्रियों के साथ क्रीड़ा और भोग किया करता था। राम-लक्ष्मण का राज्य निष्कंटक हो गया था। इसलिए उनकी ओर से भी अब युद्ध का निमन्त्रण नहीं आता था। उसके भी शत्रु नहीं रहे थे। इसलिये वह आनन्द के साथ अपना काल-यापन कर रहा था। एक दिन अपनी पुष्पवाटिका में वज्रांक मुनि को आहार-दान देकर वह महल के ऊपर बैठा विचार कर रहा था—ये भोग क्षणभंगुर हैं, इसलिये इनका भोग अधिक से अधिक-कर लेना चाहिये। न जाने कब बुढ़ापा आ जाय और ये भोग भोगने योग्य अवस्था न रहे। अब मैं भोग भी भोगूंगा और शत्रुओं को परास्त कर उत्तर और दक्षिण दोनों श्रेणियों का राज्य करूँगा। भोगों में पाप तो है; किन्तु क्या हुआ। जब बुढ़ापा आयेगा और भोग भोगने योग्य नहीं रहूँगा, तब मैं मुनि-दीक्षा ले लूंगा और उन पापों का भी नाश कर डालूंगा।

वह इस प्रकार बैठा-बैठा न जाने कितने मन के कुलावे बांध रहा था। तभी अकस्मात् बिजली गिरी और भामण्डल उसी में मर गया। इसीलिये तो आचार्यों ने कहा है—दीर्घसूत्री विनश्यति।

राम का वैराग्य और मोक्ष-गमन

लक्ष्मण के पुत्र, राम के पुत्र लव और अंकुश का उत्कर्ष सहन नहीं कर सके। फलतः उन्होंने मुनि बनना ही उचित समझा। हनुमान भी एक दिन आकाश में तारे को टूटता हुआ देखकर विचार करने लगे कि संसार के भोग, यह देह और जीवन भी इसी प्रकार अस्थिर हैं, क्षणभंगुर हैं। इन पर क्या विश्वास किया जाय और क्या इतराना। यों सोचकर वे भी मुनि बन गये और तपस्या करके अन्त में तुंगीगिरि से मोक्ष चले गये।

एक दिन सौधर्म स्वर्ग में इन्द्र देवों की सभा में शास्त्र चर्चा करते हुए कहने लगे—तुम्हें देव पर्याय पुण्यों से प्राप्त हुई है। इसको भोगों में नहीं गंवा देना चहिये। यदि यहाँ भगवान की भक्ति और धर्म की आराधना में मन लगाओगे तो इसके बाद तुम्हें मनुष्य जन्म प्राप्त हो सकता है। तब वहाँ मुक्ति की साधना की जा सकती है।

तब एक देव बोला—देवराज! स्वर्ग में आकर सब ऐसा ही कहते हैं, किन्तु जब मनुष्य-जन्म मिल जाता है तो सब भूल जाते हैं। देखिये न, राम का जीव पूर्व जन्म में जब ब्रह्म स्वर्ग का इन्द्र था, तब वह भी ऐसी ही वैराग्यभरी चर्चा किया करता था, किन्तु अब राम लक्ष्मण के मोह में कैसे फँस रहे हैं।' तब देवराज इन्द्र बोले—अनुराग का बन्धन होता ही ऐसा है। राम और लक्ष्मण का भ्रातृ-स्नेह अन्यत्र मिलना कठिन है। इन्द्र सभा समाप्त कर उठ गये।

तब दो देवों ने सोचा—चलकर देखें तो सही, दोनों भाइयों में कैसा स्नेह है। देव अयोध्या में लक्ष्मण के महल में पहुँचे। उस समय वे बैठे हुये मुँह धो रहे थे। देवों ने राम के महल में जाकर रुदन का कुहराम मचा दिया और ऐसी माया फैलाई कि मंत्री, द्वारपाल आदि लक्ष्मण के पास आकर कहने लगे—'देव! अनर्थ हो गया।' लक्ष्मण बोले—'क्या हुआ?' किन्तु किसी के मुख से वचन नहीं निकला, आँखों से आंसुओं की धार बहती रही। बड़ी कठिनाई से इतना ही निकल पाया—'देव! राम हमको अनाथ कर गये।' लक्ष्मण ने ये शब्द क्या सुने, मानो वज्रपात हो गया। एकदम उनके मुख से 'हाय' निकला और वे निष्प्राण होकर भूमि पर गिर पड़े। देवों को अपने अविवेकपूर्ण कृत्य पर बड़ा पश्चाताप हुआ और दुखित मन से वे वहाँ से चले गये।

लक्ष्मण की मृत्यु होते ही महल में भयानक क्रन्दन शुरु हो गया। लक्ष्मण की रानियाँ लक्ष्मण की मृत देह को घेरकर विलाप करने लगीं। तब किसी ने जाकर रामचन्द्र जी को दुःसंवाद दिया। राम दौड़े आये। रानियाँ उनके आते ही एक ओर हट गईं। राम ने आते ही लक्ष्मण को गोद में उठा लिया और प्रलाप करने लगे—कौन कहता है, मेरा भाई मर गया है, वह तो सो रहा है। फिर लक्ष्मण से कहने लगे—वत्स! तू तो कभी ऐसा सोता नहीं था।

आज तू ऐसा क्यों सो गया है कि जगाने पर भी नहीं जागता। अच्छा, अब समझा, तू मुझसे रूठ गया है किन्तु बता तो सही, क्यों रूठ गया है। इस प्रकार कहकर वे मूर्च्छित होकर गिर पड़े। वे बार-बार होश में आते और लक्ष्मण से नाना प्रकार की बातें करने लगते, कभी उसके मुख में भोजन देते, कभी दूध पिलाते और फिर बार-बार बेहोश हो जाते। किन्तु लक्ष्मण को एक क्षण को भी दूसरे को नहीं छूने देते। उन्हें किसी पर भी विश्वास नहीं था, न जाने ये लोग मेरे लक्ष्मण को क्या कर दें। वह रूठ गया है मुझसे, उसे मैं ही मनाऊँगा।

रुदन सुनकर सारा परिवार वहाँ एकत्रित हो गया। लवण और अंकुश भी आये। उन्होंने मृत लक्ष्मण को देखा और मन में सोचने लगे—ये लक्ष्मण नारायण थे; तीन खण्ड के अधिपति थे, कोई इनको जीतने में समर्थ नहीं था। किन्तु जब ऐसे महापुरुषों की भी मृत्यु होती है तो हम जैसों की तो बात ही क्या है। इस प्रकार विचार कर वे संसार, शरीर और भोगों से विरक्त हो गये और पिता की आज्ञा लेकर महेन्द्र वन में पहुँचे और वहाँ अमृतस्वर मुनि के पास दीक्षा लेकर मुनि बन गये तथा घोर तपस्या करके पावागिरि से मुक्त हो गये।

लक्ष्मण की मृत्यु का संवाद पाकर विभीषण, सुग्रीव आदि सभी राजा आये। जब लक्ष्मण की लाश को छाती से चिपटाये हुये तथा निरर्थक प्रलाप करते हुए राम को देखा तो सभी बहुत दुखित हुए। तब विभीषण ने राम को समझाया—देव! यह रोना छोड़िये। संसार का स्वभाव ही ऐसा है। जो यहाँ जन्म लेता है, वह मरता अवश्य है। अतः वीर लक्ष्मण की मृत देह का संस्कार करिये।' राम यह सुनकर क्रुद्ध होकर बोले—'आप लोग अपने पिता पुत्र का संस्कार करिये। मेरा भाई लक्ष्मण तो मुझसे रूठकर सो गया है। क्रोध कम होने पर वह अपने आप उठ बैठेगा।' इस तरह कहकर वे लक्ष्मण से कहने लगे—'भैया लक्ष्मण, उठ। इन दुष्टों के बीच से हम कहीं अन्यत्र चले चलेंगे। ये दुष्ट विद्याधर हमारा अनिष्ट करने पर उतारू हैं।' इस तरह कहकर लक्ष्मण की लाश को लेकर रामचन्द्र जी चल दिये और इधर-उधर घूमने लगे। उनकी रक्षा के लिये विद्याधर लोग भी उनके पीछे घूमने लगे।

इस तरह कुछ दिन बीत गये। तो शत्रुओं ने देखा—इस समय लक्ष्मण मर गया है, राम भाई के शोक में पागल हो रहे हैं, लव और कुश दीक्षा ले गये हैं। अतः अपने पिताओं का बदला लेने का बड़ा अच्छा अवसर है। यों सोचकर इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, खरदूषण आदि के पुत्रों ने सेना सजाकर अयोध्या पर चढ़ाई कर दी। शत्रु का आक्रमण सुनकर राम लक्ष्मण की लाश को कन्धे से चिपटा कर धनुष उठा कर चल दिये। शोकसंतप्त राजा भी उनकी सहायता करने लगे। बलभद्र राम पर चारों ओर से आई हुई विपत्ति देखकर जटायु और कृतान्तवक्त्र के जीव—जो चौथे स्वर्ग में देव हुए थे—उन्होंने आपस में परामर्श किया। कृतान्तवक्त्र के जीव ने जटायु के जीव से कहा—लक्ष्मण की मृत्यु हो गई है। हमारे पूर्वजन्म के स्वामी राम शोक में पागल हो गये हैं। शत्रु नगर पर अधिकार करने चले हैं। ऐसे समय में हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। तुम जटायु पक्षी थे और तुम्हें उन्होंने ही मरते समय णमोकार मंत्र सुनाया था, जिसके प्रभाव से तुम देव बने हो। मैं उनका कृतान्तवक्त्र सेनापति था। इस तरह कहकर कृतान्तवक्त्र का जीव देव दैत्य का रूप धारण कर शत्रुओं से युद्ध करने लगा। वह पर्वतों को उखाड़ कर शत्रुओं पर फेंकने लगा। शत्रु सेना डरकर भाग गई।

शत्रुओं को परास्त कर उन दोनों ने राम को प्रतिबोध देने का निश्चय किया। कृतान्तवक्त्र का जीव राम के सामने वृक्ष का सूखा ठूँठ बनकर खड़ा हो गया और जटायु का जीव उसे पानी से सींचने लगा। यह देखकर राम ने कहा—'अरे मूर्ख! इस सूखे ठूँठ को तू क्यों सींच रहा है। इससे क्या तुझे फल मिल जायेंगे।' उत्तर में जटायु के जीव ने कहा—'दूसरों को उपदेश देने वाले तो बहुत हैं, किन्तु खुद अपनी ओर कोई नहीं देखता। आप ही बताइये, आप मुर्दे को छह माह से ढोते फिर रहे हैं, वह क्या जी जायगा।' यह सुनकर राम बोले—मूर्ख और दुष्ट आदमियों के हित की बात कहो, तो वह भी उन्हें बुरी लगती है। अतः चुप रहना ही ठीक है।

इस तरह कहकर राम आगे बढ़े तो देखा—एक आदमी पत्थर पर बीज बो रहा है और दूसरा आदमी घी के वास्ते जल और बालू मथ रहा है। राम ने उन दोनों से कहा—पागलो! कहीं पत्थर से अंकुर निकलते हैं और जल या बालू से घी निकलता है? व्यर्थ क्यों मेहनत करते हो।' तब कृतान्तवक्त्र के जीव ने कहा—'तब आप ही बताइये आप क्यों मृतक शरीर को लिये फिर रहे हैं, क्या वह उससे जीवित हो जायगा?'

वे दोनों इधर बात कर ही रहे थे, तब तक जटायु का जीव किसी लाश को कन्धे पर रक्खे उससे बातचीत करता हुआ राम के आगे से निकला। राम ने उससे पूछा—तू मुर्दे को क्यों लादे हुए है और उससे सुख-दुःख की बात करने से तुझे क्या लाभ होगा?' तब जटायु के जीव ने उनसे कहा—'तब आपने भी तो अपने भाई की लाश को लाद रक्खा है। आपको ही उससे बातचीत करने से क्या मिल जायगा?' राम ने जब यह सुना तो उन्हें होश आया। वे बार-बार लक्ष्मण के मुँह की ओर ताकने लगे। जब देखा कि लक्ष्मण का शरीर प्राणरहित है तो उन्हें संसार की अनित्यता समझ कर वैराग्य हो गया। वे सोचने लगे—संसार में कौन किसकी माता और कौन भाई है! यह यौवन सदा किसका रहा है? सब कुछ विनाशीक है। इन सबसे सम्बन्ध तोड़ लेना ही श्रेयस्कर है। राम को विरक्त जानकर दोनों देव प्रगट हुए और अपना परिचय देकर बोले— हम दोनों चौथे स्वर्ग में देव हुए हैं। आपको दुखी जानकर समझाने आये थे।' राम के कहने से सुग्रीवादि ने चिता बनाकर लक्ष्मण की देह का दाह-संस्कार किया। स्नानादि से पवित्र होकर राम ने शत्रुघ्न का राज्याभिषेक करना चाहा, किन्तु उसने स्वीकार न करके दीक्षा लेने की इच्छा प्रगट की। तब राम ने लवणांकुश के पुत्र अनंगलवण को राज्य का अधिपति बनाया और दीक्षा लेने वन को चल दिये।

वन में जाकर चारणऋद्धिधारी अवधिज्ञानी मुनिसुव्रत से राम ने शत्रुघ्न सहित मुनिदीक्षा ले ली। भूषण वस्त्र और सिर के केश उखाड़ कर फेंक दिये। राम की यह दशा देखकर खड़े हुए लोगों की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। राम के साथ विभीषण, सुग्रीव, नल, नील, कव्य, विराधित आदि अनेक लोगों ने भी मुनि-दीक्षा ले ली। अनेक रानियां गृह त्याग कर आर्यिका हो गईं।

कुछ दिनों पश्चात् राम गुरु से आज्ञा लेकर एकलविहारी हो गये। वे पाँच दिनों तक उपवास करने के बाद एक नगर में पहुँचे तो उनके सुन्दर रूप को देखकर अनेक स्त्रियाँ काम से व्याकुल होकर नाना चेष्टायें करने लगीं। राम अन्तराय समझकर लौट आये और निश्चय कर लिया कि अब मैं आहार के लिये नगर में नहीं जाया करूँगा। इस प्रकार घोर तपस्या करते हुए वे अनेक देशों में विहार करते हुए कोटिशिला पहुँचे और नासाग्र दृष्टि से ध्यान करने बैठ गये।

स्वर्ग में सीता के जीव ने अवधिज्ञान से राम का मुनि होना देखकर विचार किया कि राम को किस प्रकार तपस्या से विचलित करूँ जिससे वे इसी स्वर्ग में आवें और हम दोनों साथ-साथ रहें। इस तरह विचार कर वह प्रतीन्द्र राम के पास गया और सीता का रूप बनाकर अनेक हाव-भाव करके नाना प्रकार की चेष्टायें करने लगा। किन्तु रामचन्द्रजी ध्यान से विचलित नहीं हुए। क्षपक श्रेणी आरोहण करके उन्होंने उसी समय घातिया कर्मों का नाश करके केवलज्ञान प्राप्त कर लिया। माघ शुक्ला द्वादशी की रात्रि के पिछले पहर में वे सर्वज्ञ-सर्वदर्शी अर्हन्त भगवान बन गये। चारों प्रकार के देवों और इन्द्रों ने मिलकर भगवान राम का ज्ञानोत्सव मनाया और भगवान का उपदेश हुआ।

भगवान राम अनेक देशों में विहार करते हुए तुंगीगिरि पहुँचे और योगनिरोध कर शेष अघातिया कर्मों का भी नाश करके परम पद मोक्ष को प्राप्त किया। राम सिद्ध भगवान बन गये। अब उनका संसार-भ्रमण, जन्म-जरा-मृत्यु सब छूट गये। वे कृत-कृत्य हो गये। संसार के सम्पूर्ण दुःखों से वे परे हो गये।

भगवान राम के इस पावन जीवन-चरित को जो भव्यजन भक्ति भाव से पढ़ते हैं और उन जैसा ही आदर्श जीवन बनाने का प्रयत्न करते हैं, वे भी एक दिन अवश्य भगवान बनेंगे।

बोलो भगवान रामचन्द्र की जय!